आर० एस० जोशी, विक्रय कर अधिकारी, गुजरात

बनाम

अजीत मिल्स लिमिटेड अहमदाबाद और एक अन्य

(R. S. Joshi, Sales Tax Officer, Gujarat

Vs.

Ajit Mills Ltd., Ahmedabad and Another)

और

जे० एस० जोशी

बनाम

इदार तालुका सहकारी

(J. S. Joshi

Vs.

Idar Taluka Sahakari)

(31 अगस्त, 1977)

(मुख्य न्यायाधिपति एम० एच० बेग, न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़, पी० एन० भगवती, वी० आर० कृष्ण अय्यर, एन० एल० ऊंटवालिया, एस० मुर्तज़ा फ़ज़ल अली और पी० एस० कैलाशम्)

संविधान—अनुच्छेद 246—आभासिक विधायन—आभासिक विधायन में दुर्भाव का पुट नहीं होता, अपितु यह अक्षमता से सम्बद्ध होता है।

संविधान—सप्तम अनुसूची की सूची 2 की प्रविष्टि 54 और 64, अनुच्छेद 14 और 19—[सपठित बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959 (1959 का 51) (गुजरात राज्य में यथा लागू)—धारा 37 और 46]—व्यवहारियों द्वारा विक्रय कर के रूप में गलत रूप से संगृहीत धनराशि का दाण्डिक रूप से अधिहरण करने के लिए राज्य की विधि शक्तिबाह्य नहीं है।

कानूनों और दस्तावेजों का निर्वचन—पार्श्व टिप्पण संदिग्धार्थता की स्थिति में कुछ प्रकाश डाल सकता है।

कानूनों और दस्तावेजों का निर्वचन—संविधान की विधायी सूचियों की भाषा का उदार और व्यापक अर्थान्वियन किया जाना चाहिए।

1977(8) eILR(PAT) SC 16

गुजरात राज्य में यथा लागू बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959 के अधीन रजिस्ट्रीकृत व्यवहारियों को उद्ग्रहणीय विक्रय-कर क्रेता पर डालने का हक था। उन्होंने विक्रय-कर के उद्ग्रहण के बहाने क्रेताओं से कुछ कर-मुक्त मदों पर भी विक्रय कर वसूल कर लिया और कुछ कर योग्य मदों पर अपने द्वारा संदेय कर के अधिक कर वसूल कर लिया। कुछ अरजिस्ट्रीकृत व्यवहारियों ने भी, जिनसे विक्रय-कर उद्ग्रहणीय नहीं था, क्रेताओं से विक्रय-कर के रूप में कुछ रकम वसूल कर ली। अपीलार्थी विक्रय-कर अधिकारी ने व्यवहारियों द्वारा इस प्रकार अनुचित रूप से संगृहीत रकमों का अधिनियम के उपबन्धों के अधीन अधिहरण कर लिया। व्यवहारियों ने अधिनियम के ऐसे उपबन्धों की सांविधानिकता को उच्च न्यायालय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 37(1)(ए) और 46(2) असांविधानिक हैं। इस पर प्रस्तुत अपीलें की गईं। अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित--(मुख्य न्यायाधिपति बेग और न्यायाधिपति चन्द्रचूड, भगवती, ऊंटवालिया और फ़ज़ल अली की ओर से न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर के अनुसार)--

कोई भी बात उस समय आभासिक होती है जब वह वास्तव में वह नहीं होती जो आशयित होती है, अपितु केवल वैसी प्रतीत होती है। शक्ति के विधिशास्त्र में, विधायी शक्ति का आभासिक प्रयोग या कपट अथवा अधिक भयानक रूप में संविधान के साथ कपट, ऐसी अभिव्यक्तियां हैं जिनका केवल यह अभिप्राय है कि विधानमण्डल विधि विशेष को अधि-नियमित करने में अक्षम है, यद्यपि इस पर सक्षमता का लेबल लगा दिया गया है और तब यह आभासिक विधान है। यह उल्लेख करना बहुत महत्वपूर्ण है कि यदि विधानमण्डल विधि विशेष को पारित करने के लिए सक्षम है तो वे हेतुक वास्तव में असंगत हैं जिनसे वह विधि को पारित करने के लिए प्रेरित हुआ। इस बात को विचाराधीन मामले से अधिक सुसंगत रूप में कहें तो यदि कोई विधान, जो प्रकटतः सूची की किसी एक प्रविष्टि के अधीन अधिनियमित किया गया है, स्पष्ट सत्य और तथ्य के अनुसार उस प्रविष्टि की अन्तर्वस्तु के अन्तर्गत नहीं आता, अपितु ऐसी अन्य प्रविष्टि के अन्तर्गत आता है जो किसी अन्य विधानमण्डल को सौंपी गई है, तो उसे हेतु अत्यधिक प्रशंसनीय होने पर भी आभासिक के रूप में अवैध ठहराया जा सकता है। (पैरा 16)

'अधिहरण' शब्द का अर्थ वही होना चाहिये जो निषेधात्मक निदेश को भंग करने के लिये शास्ति का है। यदि यह मान भी लिया जाए कि व्यवहारियों द्वारा किए गए विधिविरुद्ध संग्रहों के अंकों और राज्य को अधिहरण हुई रकमों के बीच गणितीय समानता है तो भी इस तथ्य से यह संकल्पनात्मक भ्रांति नहीं हो सकती कि जिसका उपबन्ध किया गया है वह दण्ड नहीं है अपितु निधियों का अन्तरण है। विधानमण्डल अधिहरण आरोपित करके उस दशा में सीमा रेखा से बाहर नहीं जाता जब वह व्यवहारी पर आघात करता है और विधि की शास्ति द्वारा उसे ग्राहकों से विधि-विरुद्ध रूप से एकत्रित रकम से वंचित कर देता है। भारत में दण्ड प्रक्रिया संहिता, सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क विधियां तथा अनेक अन्य दाण्डिक कानूनों में अधिहरण को शास्ति के रूप में स्वीकार करने वाले सिद्धान्त का प्रयोग किया गया है। यह दलील कि बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959 की धारा 37(1) में व्यतिक्रम का विचार किये बिना भारी दायित्व डाला गया है, अधिहरण को शास्ति के स्वरूप से वंचित करने के लिये बलहीन है। (पैरा 19)

पार्श्व टिप्पण, जो संदिग्ध स्थितियों में कुछ प्रकाश डाल सकता है, अधिहरण को भी शास्ति मानता है। दूसरे, कानून के शब्द सप्रयोजन संकेत हैं जिनका सीधा और स्पष्ट अर्थ निकाला जाना है, न कि शब्दों के उपरान्त शब्दों को प्रगट करके। इसलिये, जब धारा 37(1) में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि अनुचित संग्रहों का अधिहरण कर लिया जाएगा, तब उसका वही अभिप्राय है जो इसमें कहा गया है। अधिहरण शब्दावली की दृष्टि से दाण्डिक होने के कारण, उसका यहां भी वही अर्थ लगाया जाना चाहिये। (पैरा 29)

(न्यायाधिपति कैलाशम् के अनुसार)--विधायी शक्ति प्रदान करने वाले शब्दों के अर्थान्वयन का सिद्धान्त यह है कि शब्दों का सर्वाधिक उदार अर्थान्वयन किया जाना चाहिये जिससे वे अपने विस्तृततम रूप में प्रभावित हो सकें। सूची की किसी भी मद को संकुचित निर्बन्धित अर्थ में नहीं पढ़ा जाना है। प्रत्येक साधारण शब्द के विषय में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिये कि उसका विस्तार उन सभी आनुषंगिक या गौण विषयों पर है जो उचित और युक्तियुक्त रूप से उसके अन्तर्गत आ सकते हैं। (पैरा 47)

इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि धारा 46(2), जो किसी व्यक्ति द्वारा, जो रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी नहीं है और विक्रय या

क्रय की बाबत कर का संदाय करने के दायित्वाधीन नहीं है, माल के विक्रय पर कर के रूप में किसी भी धनराशि का संग्रह किए जाने का और रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी द्वारा अधिनियम के उपबन्धों के अधीन उसके द्वारा संदेय कर की रकम से अधिक रकम कर के रूप में संगृहीत किए जाने का निषेध करती है, संविधान का अतिक्रमण करती है। ऐसे उपबन्ध में कोई असांविधानिकता नहीं है। विक्रय कर विधि के प्रवर्तन के लिये यह उपबन्ध अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ऐसे निषेध के बिना कर के अप्राधिकृत संग्रह को कभी भी नहीं रोका जा सकता। विक्रय कर विधि में ऐसी वस्तुओं को निश्चित करना होगा जिन पर कर संगृहीत किया जा सकता है और किसी ऐसी रीति से कर के संग्रह का निषेध करना होगा जो विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं है। (पैरा 64)

धारा 37 के अधीन शास्ति और अधिहरण के उद्ग्रहण का उपबन्ध है जबकि धारा 63(1) (एच) के अधीन व्यक्ति बिना युक्तियुक्त कारण के धारा 46 के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर दाण्डिक अभियोजन के दायित्वाधीन हो जाता है। अतः प्राधिकारी को यह अवधारित करने की मनमानी या अनियन्त्रित शक्ति नहीं दी गई है कि वह धारा 37 के अधीन कार्यवाही करे या धारा 63(1) (एच) के अधीन। धारा 37 के अधीन कार्यवाहियां शास्ति और अधिहरण के स्वरूप की हैं जबकि धारा 63(1) (एच) के अधीन कार्यवाही दाण्डिक अभियोजन द्वारा दण्ड की है। जब धारा 37 के अधीन कार्यवाही की जाती है तो उन्हीं तथ्यों के आधार पर धारा 63(1) (एच) के अधीन अभियोजन संस्थित नहीं किया जा सकता। इसलिये अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के बारे में अभिवचन असफल है? इन उपबन्धों द्वारा अनुच्छेद 19(1) (च) का उल्लंघन होने का अभिवचन भी उतना ही अमान्य है। (पैरा 65)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1975] (1975) 1 एस० सी० आर० 1=[1974] 2 उम० नि० प० 952:
मगनलाल छगनलाल (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम **बृहत्तर मुम्बई नगर निगम और अन्य**
[Magan Lal Chagan Lal (P) Ltd. *Vs.* The Municipal Corporation of Greater Bombay and Others]; 31

[1973] (1973) 3 एस० सी० आर० 987=[1973] 3 उम० नि० प० 351 :
उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य बनाम मैसर्स अन्नपूर्णा बिस्कुट मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी
(The State of Uttar Pradesh and Another *Vs.* M/s. Annapurna Biscuit Manufacturing Co); 20, 22,57

[1973] (1973) 2 एस० सी० आर० 691=[1973] 1 उम० नि० प० 469 :
रमेश चन्द्र जे० ठक्कर बनाम अस्सनदास परमानन्द झावेरी
(Ramesh Chandra J. Thakkar *Vs.* Assandas; Parmanand Jhaveri) ; 27

[1971] (1971) 2 एस० सी० आर० 817=[1971] 1 उम० नि० प० 343 :
जांच चौकी अधिकारी, कोयम्बटूर और अन्य बनाम मैसर्स के० पी० अब्दुल्ला एण्ड ब्रदर्स
(The Check Post Officer, Coimbatore *Vs.* M/s. K. P. Abdulla and Bros.) ; 27

[1970] (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930 :
अशोक मार्केटिंग लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और एक अन्य
(Ashok Marketing Ltd. *Vs.* The State of Bihar and Another) ; 20, 22, 23, 24, 55, 57, 58

[1968] (1968) 1 एस० सी० आर० 735 :
कान्तिलाल बाबूलाल बनाम एच० सी० पटेल
(Kantilal Babulal *Vs.* H. C. Patel) 26, 31, 56, 58, 65

[1967] (1967) 3 एस० सी० आर० 65 :
मानकलाल छोटालाल और अन्य बनाम एम० जी० मकवाना और अन्य
(Maneklal Chhotalal and Others *Vs.* M. G. Makwana and Others) ; 27

1977(8) eILR(PAT) SC 16

[1965] 16 एस० टी० सी० 1005:
राम गोपाल बनाम विक्रय कर अधिकारी, सूरत और एक अन्य
(Ram Gopal *Vs.* Sales Tax Officer, Surat and Another); 56

[1965] 16 एस० टी० सी० 973:
कान्तिलाल बाबूलाल बनाम एच० सी० पटेल
(Kanti Lal Babulal *Vs.* H. C. Patel); 56

[1964] (1964) 6 एस० सी० आर० 867:
आर० अब्दुल कादिर एण्ड कम्पनी बनाम विक्रय कर अधिकारी, हैदराबाद
(R. Abdul Qadir & Co. *Vs.* The Sales Tax Officer, Hyderabad); 20, 21, 22, 24, 53, 55, 57, 58, 59

[1962] (1962) 2 एस० सी० आर० 570:
जॉर्ज ओक्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम मद्रास राज्य
[George Oakes (P) Ltd. *Vs.* The State of Madras]; 27

[1962] (1962) 1 एस० सी० आर० 549:
ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य
(Orient Paper Mills Ltd. *Vs.* The State of Orissa and Others) 23, 51, 53, 55, 58.

[1956] (1956) ए० सी० 421:
अटर्नी जनरल बनाम पार्सन्स
(Attorney General *Vs.* Parsons); 35

[1953] (1953) एस० सी० आर० 1069:
मुम्बई राज्य बनाम युनाइटेड मोटर्स (इण्डिया) लिमिटेड
[The State of Bombay *Vs.* The United Motors (India) Ltd.] 51, 55

[1953] ए० आई० आर० 1953 एस० सी० 248 :
बांकुरा नगरपालिका बनाम लालजी राजा एण्ड सन्स
(Bankura Municipality *Vs.* Lalji Raja and Sons) ; 19

[1876] (1876) 94 यू० एस० 113 :
मन्न बनाम इल्लिनॉयस
(Munn *Vs.* Illinois) ; 2

[1846] 11 लॉयर्स एडिशन 714 :
स्टेट ऑफ मेरिलैण्ड बनाम बाल्टिमोर एण्ड ओहयो आर० आर० कम्पनी
(State of Meryland *Vs.* Baltimore & Ohio R. R. Co.) ; 18

सिविल अपीली अधिकारिता : 1975 की सिविल अपील संख्या 533 और 1004.

1971 की विशेष सिविल अपील संख्या 421 और 508 में गुजरात उच्च न्यायालय के तारीख 16 अगस्त, 1973 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपीलें।

1975 की सिविल अपील संख्या 1410 और 1671-1685.

1970 की सिविल अपील संख्या 480, 377 और 1220 और 1971 की सिविल अपील संख्या 30, 129, 155, 184, 362, 363, 391, 406, 822, 823 और 1764 और 1972 की सिविल अपील संख्या 234 और 449 में गुजरात उच्च, न्यायालय के तारीख के 16 अगस्त, 1973 वाले निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई अपीलें।

अपीलार्थियों की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 533, 1004, 1410 और 1671-1685 में)	सर्वश्री एस० टी० देसाई, आर० एम० मेहता, एम० एन० श्रॉफ और कुमारी राधा रंगस्वामी

1977(8) eILR(PAT) SC 16

मध्यक्षेपी (महाराष्ट्र राज्य) की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 1410 में) — श्री एफ० एस० नरीमन, एम० एन० श्रॉफ और कुमारी राधा रंगस्वामी

प्रत्यर्थी की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 1671 में) — श्री कानिष्कर एच० काजी, श्रीमती एस० भण्डारे, सर्वश्री एम० एस० नरसिम्हन, ए० के० माथुर, ए० के० शर्मा और कुमारी नलिनी पडुवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 1685 में) — श्री के० जे० जॉन

प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 533 में) और **प्रत्यर्थियों की ओर से** (1975 की सिविल अपील संख्या 1673-75, 1677-78, 1680 और 1682-1683 में) — श्री बी० सेन (1975 की सिविल अपील संख्या 533 में) और श्री आई० एन० श्रॉफ

अभिलेख अधिवक्ता

अपीलार्थियों की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 533, 1004, 1410 और 1671-1685 में और **मध्यक्षेपी (महाराष्ट्र राज्य) की ओर से** (1975 की सिविल अपील संख्या 1410 में) — श्री एम० एन० श्रॉफ

प्रत्यर्थी की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 1671 में) — श्रीमती सुनन्दा भण्डारे

प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 533 में) और — श्री आई० एन० श्रॉफ

प्रत्यर्थी की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 1673-75, 1677-78, 1680 और 1682-83 में)

प्रत्यर्थी की ओर से (1975 की सिविल अपील संख्या 1685 में) — मैसर्स जे० बी० दादाचांजी एण्ड कम्पनी

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर ने दिया

न्यायाधिपति कृष्ण अय्यर—

इन अपीलों का, जो गुजरात राज्य द्वारा प्रमाणपत्र लेकर की गई हैं, अखिल भारतीय प्रभाव है, क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा अवैध घोषित की गई विक्रय कर विधि से देश के शेष भाग में इसी प्रकार के कानूनों में विद्यमान तत्समान उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। व्यवहारियों द्वारा उपभोक्ताओं को लूटने का प्रतिकार करने के लिए प्रकल्पित कुछ प्रकार के विक्रय विधान की सांविधानिकता पर विभिन्न उच्च न्यायालयों ने विरोधी निर्णय दिए हैं और विवाद्यक इस बात से जटिल हो जाता है कि इस विषय पर इस न्यायालय द्वारा पहले दिए गए विनिर्णयों में विद्यमान तर्क का दोनों पक्षों द्वारा सहारा लिया गया है। इस अस्थिर विधिक स्थिति से इस न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ के लिए (जो हाल के 42वें संशोधन द्वारा प्रायः अधिकतम संख्या तक विस्तृत कर दिया गया है) अपने पूर्ववर्ती निर्णयों का पुनर्विलोकन करके और यदि अपेक्षित हो तो उन्हें उलट कर तथा एक या अधिक उच्च न्यायालयों के मत पर विचार करके सापेक्ष निश्चितता सहित विधि को घोषित करना आवश्यक हो जाता है ताकि सही स्थिति अन्तिम रूप से पुनः दोहराई जा सके। विधि की निश्चितता नागरिक की सुरक्षा है और नजीरों में प्रकट न्यायिक मतभेद के इतिहास को ध्यान में रखते हुए, जिसे हम अभी-अभी स्पष्ट करेंगे, प्राधिकारिक विनिश्चय तत्काल आवश्यक है।

32 M. of Law/78—12.

2. आरम्भिक चेतावनी। किसी विधान की जांच उसकी शक्यता के दृष्टिकोण से करते समय, न्यायालय को राष्ट्र की सजीव विधि का निर्वचन करते समय नम्य न कि कठोर, दूरदर्शी न कि हठधर्मी, उदार न कि शाब्दिक, होना चाहिए। हमें संयुक्त राज्य अमेरिका की सुप्रीम कोर्ट द्वारा **मन्न** बनाम **इल्लिनॉयस**[1] में प्रतिपादित इस सांविधानिक प्रतिपादना को भी स्मरण रखना होगा कि 'न्यायालय विधायी निकायों के निर्णयों के स्थान पर अपने सामाजिक और आर्थिक विचारों को प्रतिस्थापित नहीं करते'। इसके अतिरिक्त जबकि अतिलंघन को क्षमा नहीं किया जाएगा, न्यायिक अर्थान्वियन में सांविधानिकता की उपधारणा का पुट अवश्य होना चाहिए। हमारे न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त ये बातें राज्य की न्यायिक और विधायी शाखाओं के बीच, जो दोनों संविधान के आश्रय में कार्य करती हैं, अस्थायी व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

3. मामले का सार, बल्कि विवाद का तत्व, क्षण भर के लिए विभिन्न अपीलों में ऐसे मामूली अन्तरों की अवहेलना करने पर जिनके लिए पृथक्-पृथक् व्यवहार किया जा सकता है, यह है कि क्या राज्य विधानमण्डल के लिए, सप्तम अनुसूची की तीन सूचियों और अनुच्छेद 14 और 19 को ध्यान में रखते हुए, यह अधिनियमित करना अनुज्ञेय है कि व्यवहारियों द्वारा विक्रय कर के रूप में संगृहीत धनराशि, जो राज्य की विधि के अधीन वसूल की जाने योग्य नहीं है और वास्तव में उसके द्वारा निषिद्ध है, सूची 2 में प्रविष्टि 54, सपठित प्रविष्टि 64, के अधीन दाण्डिक रूप से सार्वजनिक खजाने में अधिहरण की जाएगी। गुजरात राज्य ने, जिसकी इस सम्बन्ध में विधि को उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति-बाह्य अभिनिर्धारित कर दिया था, प्रमाणपत्र लेकर की गई अपनी अपील में यह विवाद्यक पृथक् रूप से उठाया है और सकारात्मक उत्तर के लिए दलील दी है। हमारा सम्बन्ध जिस विधि से है वह बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959 (1959 का बॉम्बे अधिनियम 51) है (जिसे संक्षेप में अधिनियम कहा गया है), जो सुसंगत अवधि के दौरान गुजरात राज्य को लागू होता था, चाहे स्वयं महाराष्ट्र राज्य ने, जैसा कि श्री नरीमन ने, जिन्होंने उस राज्य की ओर से मध्यक्षेप किया है, बताया है, विधान

---

1 (1876) 94 यू० एस० 113 (लेबरबोर्ड बनाम जोन्स एण्ड लाफलीन 301 यू० एस० 1, 33-34, कारविन का कांस्टिट्यूशन आफ यू० एस० ए०, पृष्ठ XXX, में उद्धृत)

की विधिमान्यता को अनुपूरित और सही सिद्ध करने के लिए विधि में उपान्तरण कर दिया है।

4. कानून के उपबन्ध, जो असांविधानिक हो गए हैं (जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किया गया है) अधिनियम की धारा 37(1) और 46 हैं। तथापि महाराष्ट्र के उच्च न्यायालय ने इसके बिल्कुल विपरीत मत अपनाया है और इस विवाद पर, लगभग इसी प्रकार के कानूनों पर विचार करते समय, अन्य न्यायालय एक या दूसरी ओर हो गए हैं। हम अपने निर्णय को उसी अधिनियम तक सीमित रखेंगे जो हमारे समक्ष है और अन्य कानूनों की विधिमान्यता पर, जिनका प्रासंगिक रूप में न्यायालय में उल्लेख किया गया है, विचार नहीं करेंगे। विवाद्य विषय इतना नाजुक किन्तु सूक्ष्म है कि कानून की स्कीम में संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण परिवर्तन से भी विपरीत परिणाम हो सकता है।

5. अब हम प्रारम्भिक रूप से तथ्यात्मक विधिक व्यवस्था को प्रस्तुत करेंगे, ताकि यह बात समझ में आ सके कि उच्च न्यायालय द्वारा दी गई कानूनी प्रताड़ना उचित थी या नहीं। सौभाग्य से, तथ्य संक्षिप्त हैं और उन पर विवाद नहीं है और वे विधिक पर्दे पर उज्जवलता से प्रकट हुए हैं। प्रत्यर्थी, जो अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी है, उपबन्धों की विवक्षा द्वारा अपने से उद्ग्रहणीय विक्रय कर को क्रेता पर डालने का हकदार है किन्तु अनेक वस्तुओं, विशेष रूप से जीवन की आवश्यकताएं कर के दायित्वाधीन नहीं थीं (धारा 5)। वसूल न की जा सकने की अन्य स्थितियां भी विद्यमान हैं। फिर भी अनेक व्यवहारियों ने, विक्रय कर उद्ग्रहण के बहाने क्रेताओं से ऐसी कर कर-मुक्त मदों के सम्बन्ध में भी या अपने द्वारा संदेय कर से अधिक धनराशियां या उस दशा में भी जब व्यवहारी निर्धार्य नहीं थे, ऐसा कर संगृहीत करने की ओर झुकाव दर्शित किया। विक्रय कर विधि के ऐसे दुरुपयोग की सम्भावना ने विधानमन्डल को क्रेताओं से ऐसे संग्रहण के विरुद्ध धारा 46 के अधीन निषेध अधिनियमित करके सर्वसाधारण को इस भार से बचाने के लिए प्रेरित किया। मात्र निषेधात्मक उपबन्ध तब तक 'सदिच्छा' ही रह सकती है जब तक कि इसे प्रभावशील न बनाया जाए और कानून इस पर नियन्त्रण न रखे। धारा 37(1) (ग) और धारा 63(1)(एच) धारा 46 के हथियार है जो अतिक्रमण

किए जाने पर विभागीय रूप से या दाण्डिक रूप से क्रियाशील हो जाते हैं। अब हम धारा 46(1) और (2) को प्रस्तुत कर देते हैं:—

> *"46(1) कोई भी व्यक्ति ऐसे माल के विक्रय की बाबत कर के रूप में कोई धनराशि संगृहीत नहीं करेगा जिस पर धारा 5 के अनुसार कोई कर संदेय नहीं है।
>
> (2) कोई भी व्यक्ति, जो रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी नहीं है और किसी विक्रय या क्रय की बाबत कर का संदाय करने के दायित्वाधीन नहीं है, किसी माल के विक्रय पर किसी भी अन्य व्यक्ति से कर के रूप में कोई धनराशि संगृहीत नहीं करेगा और कोई भी रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन अपने द्वारा संदेय कर की रकम से अधिक कर के रूप में कोई रकम संगृहीत नहीं करेगा।
>
> * * * * * ।"

6. यद्यपि व्यवहारी को क्रेता पर कर का भार डालने में समर्थ बनाने वाला कोई विनिर्दिष्ट उपबन्ध नहीं है, तथापि धारा 46 में ऐसी वसूली के प्राधिकार की आवश्यक विवक्षा है, क्योंकि उसे ऐसा करने या न करने का विकल्प है। कर का संदाय करने का प्राथमिक दायित्व व्यवहारी का है किन्तु यह सुस्थापित व्यापारिक प्रथा है कि व्यवहारी को विक्रय के अन्य पक्ष पर कर का भार डालने से नहीं रोका गया है और इसे अभिव्यक्त या विवक्षित विधायी मान्यता प्राप्त है। ऐसी प्रथा अधिनियम की धारा 46 में विवक्षित है, तथापि इस उपबन्ध से यह स्पष्ट है कि धारा 5 के अधीन छूट प्राप्त किसी माल के विक्रय की बाबत कर

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "46(1) No person shall collect any sum by way of tax in respect of sale of any goods on which by virtue of section 5 no tax is payable.
>
> (2) No person, who is not a Registered dealer and liable to pay tax in respect of any sale or purchase, shall collect on the sale of any goods any sum by way of tax from any other person and no Registered dealer shall collect any amount by way of tax in excess of the amount of tax payable by him under the provisions of this Act.
>
> * * * * *"

के रूप में किसी भी धनराशि का संग्रह नहीं किया जाएगा और कोई भी रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी अधिनियम के अधीन संदेय कर से अधिक धनराशि कर के रूप में वसूल नहीं करेगा । निस्संदेह जो व्यवहारी रजिस्ट्रीकृत नहीं है, वह किसी भी अन्य व्यक्ति से कर के रूप में किसी भी धनराशि का संग्रह नहीं कर सकता । संक्षेप में, धारा 46 में तीन प्रकार की मनाही है । इस निषेधात्मक परियोजना को, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, दो अन्य उपबन्धों द्वारा, जिनमें से एक दाण्डिक कार्यवाही का है और दूसरी विभागीय कार्यवाही का, प्रवर्तनशील बनाया गया है ।

7. धारा 63(1)(एच) में धारा 46 के उपबन्धों के उल्लंघन को (जिन्हें ऊपर उद्धृत किया गया है) अपराध करार दिया गया है और दोषसिद्धि होने पर (2000 रु० तक) जुर्माने सहित या उसके बिना (6 मास तक) साधारण कारावास का दण्ड अधिरोपित किया गया है। हम धारा 63(1)(एच) को उद्धृत कर देते हैं क्योंकि उसका बाद में उल्लेख करने की आवश्यकता पड़ सकती है :—

> *"63(1)(एच). यदि कोई व्यक्ति धारा 46 के किसी उपबन्ध का उल्लंघन करेगा तो वह सिद्धदोष होने पर 6 मास तक के साधारण कारावास से या दो हजार रुपए से अनधिक जुर्माने से या दोनों से और यदि अपराध जारी रहने वाला होगा तो अपराध जारी रहने की अवधि के दौरान प्रति दिन एक सौ रुपए से अनधिक जुर्माने से दण्डित किया जाएगा ।"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "63(1) (h) Whoever contravenes any of the provisions of section 46, shall, on conviction be punished with simple imprisonment which may extend to six months or with fine not exceeding two thousand rupees, or with both; and when the offence is a continuing one, with a daily fine not exceeding one hundred rupees during the period of continuance of the offence."

धारा 37(1) धारा 46(1) के उल्लंघन के लिए विभागीय शास्ति अधिरोपित करने के सम्बन्ध में है। यह निम्नलिखित रूप में है--

*"37(1)(ए). यदि कोई व्यक्ति, जो इस अधिनियम के अधीन कर का संदाय करने के दायित्वाधीन व्यवहारी नहीं है, अपने द्वारा संदेय कर से अधिक कर के रूप में किसी धनराशि का संग्रह करेगा या अन्यथा धारा 46 के उपबन्धों का उल्लंघन करके कर का संग्रह करेगा तो वह उस कर के अतिरिक्त जिसका उसे संदाय करना है, निम्नलिखित शास्ति के दायित्वाधीन होगा--

(i) खण्ड (ए) में उल्लिखित उल्लंघन होने पर दो हजार रुपए से अनधिक की शास्ति....:और इसके अतिरिक्त....ऐसे व्यक्ति द्वारा धारा 46 का उल्लंघन करके कर के रूप में संगृहीत धनराशि राज्य सरकार को अधिगृहीत हो जाएगी। (हमारे द्वारा रेखांकित किया गया)।

* * * * *।"

आक्षेपित उपबन्ध धारा 46 और 37(1) (विशेष रूप से रेखांकित भाग) हैं और असांविधानिकता को सिद्ध करने के लिए दिए गए आधारों पर आगे विचार किया गया है।

8. यह कहना उचित होगा कि दो अलग-अलग व्यवहारियों की ओर से उपस्थित श्री काजी और श्री बी० सेन ने इस आशय के प्रभाव को समाप्त किया है कि प्रायः दुरुपयोग के लिए व्यापारी वर्ग दोषी होता

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"37(1) (a) If any person, not being a dealer liable to pay tax under this Act, collects any sum by way of tax in excess of the tax payable by him or otherwise collects tax in contravention of the provisions of section 46, he shall be liable to pay, in addition to any tax for which he may be liable, a penalty as follows—

(i) where there has been a contravention referred to in clause (a), a penalty of an amount not exceeding two thousand rupees....and, in addition....any sum collected by the person by way of tax in contravention of section 46 shall be forfeited to the state Government" (emphasis, supplied)

* * * * *"

है और यह कहा है कि अनेक मामलों में राजस्व ने, कर के रूप में, ग्राहकों से धनराशि का संग्रह करने के लिए व्यवहारियों को प्रेरित किया है, चूंकि विधि अनिश्चित थी और प्राय: उसका निर्वचन विभाग के एकतन्त्रवादी पदधारियों द्वारा निर्धारितियों के विरुद्ध किया था। उदाहरण के लिए, निर्धारण प्राधिकारी अधिनियम में विद्यमान परिस्थितियों का अर्थान्वयन निरन्तर निर्धारितियों के विरुद्ध करते रहे हैं या विधिक और सांविधानिक वर्जनों से बच निकलते रहे हैं, जिससे व्यवहारी उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में मुकदमेबाजी करने के लिए विवश हो जाते हैं और अपनी बात पर विजय प्राप्त कर लेने पर उन्हें पता चलता है कि यह सिद्ध करने में कि कर संग्रहणीय नहीं था, समस्त व्यय, विलम्ब और कठोर प्रयास के पश्चात् विभाग ने चुपके से अधिहरण उपबंध का सहारा ले लिया। राजस्व की सरल स्थिति यह थी कि 'एक तरफ हमारी विजय है और दूसरी तरफ तुम्हारी हार है'। इसका कारण कर संग्रहकर्ताओं का छूट के लिए किसी भी उचित दावे के प्रति कठोर प्रतिकूल दृष्टिकोण है। परिणामस्वरूप क्रेताओं को हानि उठानी पड़ी क्योंकि व्यापारी कर की छूट के लिए मुकदमेबाजी द्वारा व्यर्थ की विजयों के लिए उत्सुक नहीं थे।

9. उदाहरण के लिए, श्री काजी ने संकर्म संविदाओं, अग्रिम संविदाओं, भाटक-क्रय करारों, अनिवार्य अन्तरणों, आकस्मिक विक्रयों, कलात्मक कृतियों आदि का उल्लेख किया जिनमें विभाग द्वारा व्यवहारियों को निरर्थक विजय प्राप्त करने के लिए विवश किया गया, क्योंकि मुकदमेबाजी के अन्त में वे विधि के अनुसार सफल हो गए किन्तु वास्तव में हार गए, क्योंकि आयुक्त ने धारा 37(1)(ए) के अधीन धन वापस ले लिया।

10. श्री बी० सेन ने, जो 1975 की सिविल अपील सं० 533 में प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित हुए हैं, और भी अधिक दुखद कथा कही है। ईमानदार व्यवहारी ने अपने द्वारा विक्रय पर संगृहीत कुल राशियों की विवरणी दी और विक्रय कर अधिकारी को पता लगा कि कुछ मदें कराधेय नहीं थीं और इसलिए प्रतिदाय शोध्य था। उसने प्रतिदाय का निदेश दिया और कठोर पश्चात्कथन द्वारा अधिनियम की धारा 37(1) (ए) के अधीन उस रकम का अधिहरण कर लिया। निश्चय ही, इन दृष्टांतों से यह बात स्पष्ट होती है कि धारा 37(1) (ए) का प्रविषय

व्यवहारियों द्वारा कुछ अधमता से कीमत के साथ-साथ कर के रूप में संगृहीत धनराशियों तक ही निर्बन्धित नहीं है, अपितु उनके द्वारा स्वयं कर अधिकारियों के वास्तविक या प्रत्याशित (यद्यपि गलत) मत के आधार पर निर्दोषिता से संगृहीत धनराशियों पर भी है। यदि सरकार के राजस्व अधिकारी शक्ति का स्पष्ट दुरुपयोग करके और अधिक कर वसूल करके कल्याणकारी राज्य को बदनाम करते हैं तो उन्हें निश्चय ही सार्वजनिक रूप से दण्डित किया जाना चाहिए, क्योंकि विधि का सम्मान एकपक्षीय नहीं होता। आक्षेपित उपबन्धों की शक्यता पर विचार करते समय हम इस बात को ध्यान में रखेंगे, तथापि यहां हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि बड़ी संख्या में व्यवहारियों ने, जिनके लिए विधान बनाया गया है, विक्रय कर के बहाने स्पष्टतया आपराधिक उद्ग्रहण किए हैं। विधि की सांविधानिकता का न्यायनिर्णय उसके अन्तर्गत आने वाले सामान्य मामलों के अनुसार किया जाना होता है न कि उसके द्वारा बलिदान किए जाने वाले तुच्छ और अपवादित मामलों के अनुसार। चाहे जो भी हो इस बात पर विवाद नहीं है कि जिन व्यवहारियों के विरुद्ध धारा 46 और धारा 37(1)(ए) का प्रयोग किया गया है, उन्होंने कर के रूप में ऐसी धनराशियां, संगृहीत की हैं जो कर के रूप में संग्रह योग्य नहीं थीं। सभी प्रत्यर्थियों ने अपने क्रेताओं से विक्रय कर के रूप में ऐसी रकमों का संग्रह किया है जो धारा 46 के अन्तर्गत आ जाती है। कर अधिकारियों को इस विचलन का पता लगा और धारा 46, सपठित धारा 37(1), में विद्यमान निषेध तथा शास्ति पर कार्यवाही करते हुए उन्होंने शास्तियां अधिरोपित कीं और उन व्यक्तियों द्वारा धारा 46 का उल्लंघन करके कर के रूप में संगृहीत धनराशियां, उनमें से विक्रय कर के गलत उद्ग्रहण के रूप में क्रेताओं को प्रतिदाय की गई दर्शित रकमों को घटाकर, अधिहृत कर लीं। अधिहरण के अन्तिम अंग को, जो धारा 37(1) के पूर्ण रूप से शक्त्यन्तर्गत होने पर कायम रह सकता है, उच्च न्यायालय द्वारा अविधिमान्य ठहराया गया है और व्यथित राज्य ने इसकी भारी आर्थिक विवक्षाओं का रोना रोते हुए और इस बात पर जोर देते हुए अपील की है कि आक्षेपित उपबन्ध की नैतिकता और सक्षमता को चुनौती नहीं दी जा सकती। हम यह भी कहना चाहेंगे कि श्री एस० टी० देसाई ने न्यायालय को विश्वास दिलाया है कि राज्य का उचित दृष्टिकोण यह रहा है कि यदि व्यवहारी

क्रेता को प्रतिदाय कर देता है तो ऐसी धनराशियों को अधिहरण लागू नहीं होगा और वे इस विश्वास का पालन करेंगे।

11. विवादग्रस्त तीन विषय (क) विधायी सक्षमता, (ख) अनुच्छेद 19 के उल्लंघन और (ग) अनुच्छेद 14 के अधीन गारंटीकृत प्रक्रियात्मक समानता के उल्लंघन के विषय में हैं। मुख्य समस्या विधायी सक्षमता की है। अन्य दो, यदि सिद्ध हो जाएँ तो, चुनौती दिए गए उपबन्धों को शून्य कर देने के लिए पर्याप्त हैं, किन्तु उन पर बहुत हल्का जोर दिया गया है, क्योंकि संभवतः काउन्सेल हल्की संभावना के प्रति जागरूक है।

12. देखने और पढ़ने वाला तथ्यों को बिना कठिनाई के समझ सकता है, क्योंकि राजस्व ने धारा 46 के अनुसार व्यवहारियों द्वारा क्रेताओं से वसूल की गई धनराशियों को, उनमें से प्रतिदाय की गई धनराशियों को, यदि कोई हों, घटाकर, अधिहरण करने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया है। फिर भी राज्य को हमारी सांविधानिक स्कीम के अधीन सीमित विधायी शक्ति प्राप्त है जो सप्तम अनुसूची की सूची 2 और 3 तक निर्बंधित है। यदि धारा 37(1)(ए) सूची में विद्यमान प्रविष्टियों (प्रविष्टि 54 और 64) पर लागू होती है और उसे आनुषंगिक शक्तियों के सिद्धान्त के अधीन उचित नहीं ठहराया जा सकता तो विधि निश्चय ही अनुचित है, चाहे नैतिकता कुछ भी हो। राज्य को लुटेरे को लूटने का कोई दैवी अधिकार नहीं है। यदि धन गलती से या असत्यता से इकट्ठा किया गया है तो यह उसके स्वामी के पास वापिस जाना चाहिए, न कि राज्य के पास। ऐसी कोई विधायी प्रविष्टि भी नहीं है जो राज्य को व्यापारियों से विक्रय के सम्बन्ध में सभी विधि-विरुद्ध उद्ग्रहणों को लेकर अपने खजाने में डालने के लिए सशक्त बनाती है। निवेदन की इसी मुख्य बात से उच्च न्यायालय प्रभावित हुआ है। जो प्रति-दलील श्री एस० टी० देसाई द्वारा राज्य की ओर से दी गई है और जिसे श्री नरीमन द्वारा जोड़े गए विस्तार से प्रबल बनाया गया है, वह यह है कि राज्य को विक्रय पर कर अधिरोपित करने का ही अधिकार प्राप्त नहीं है, अपितु यह सुनिश्चित करने का भी अधिकार प्राप्त है कि विक्रय कर विधि का वाणिज्यिक समुदाय द्वारा ग्राहक समुदाय पर कराधान के बहाने भार डालकर दुरुपयोग न किया जाए। यह प्राथमिक आर्थिक

सिद्धान्त है कि यद्यपि विक्रय कर का विधिक भार व्यवहारी पर पड़ता है, तथापि आर्थिक प्रभाव ग्राहक पर पड़ता है। अपने सामाजिक न्याय के विचारों और प्रचारों सहित कल्याणकारी राज्य का यह पवित्र कर्तव्य है कि जब वह कराधान की अपनी शक्ति का प्रयोग करे तो विधि का प्रवर्तन ऐसी रीति से करे जिससे जनसाधारण की किसी ऐसे अतिरिक्त भार से संरक्षा की जाए जो उन पर व्यापारियों द्वारा कानून के बहाने डाला जाता है।

13. विरोधी दलीलों के कुछ आवश्यक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए हम पहले उन पर विचार कर लेते हैं। मामले के तथ्य स्पष्ट हैं। विधि का उद्देश्य स्पष्ट है। विधानमण्डल का हेतुक अधिनियम को आभासिक युक्ति के रूप में अनुचित ठहराने के लिए असंगत है। सार्वजनिक रिष्टि की प्रताड़ना और कानून के कार्यकरण में अजान में या जानबूझकर की जाने वाली सम्भावित ज्यादतियों के विरुद्ध उपभोक्ता के हितों की संरक्षा सामाजिक कल्याणकारी राज्य की केवल आनुषंगिक शक्ति ही नहीं है, अपितु यह निश्चय ही उसका आवश्यक दायित्व है। ऐसा करने के लिए एक सशक्त निषेधात्मक प्रक्रिया व्यापारी पर व्यतिक्रम रहित या आत्यंतिक दायित्व द्वारा शास्ति डालना है जिससे उस दशा में जिसमें उससे कर शोध्य न हो, उसके द्वारा 'कर के रूप में' ली गई और अपने पास रखी गई कुल 'अनुचित' धनराशियां राज्य के पास चली जाएं। ये शास्तियां ऐसे अन्य दाण्डिक अधिरोपणों के अतिरिक्त होंगी जो उन व्यापारियों को रोकने और ठीक करने के लिए हों जिनकी ग्राहकों से व्यवहार करने की कला में 'अनेक छोटी-छोटी राशियों से बनी हुई बड़ी राशियां' सम्मिलित हो सकती हैं। यदि तर्क के अनुसार ये कार्यवाहियां सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन कर लगाने की शक्ति से आवश्यक रूप से सम्बन्धित हैं तो यह बात समझ नहीं आती कि आक्षेपित विधान को विधायी सक्षमता के अतिक्रमण के रूप में या 'आभासिक युक्ति' के रूप में या 'सम्पूरक की बजाय अनुपूरक' के रूप में अनुचित कैसे ठहराया जा सकता है। किन्तु वास्तव में उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय की नजीरों से निकाले गए उद्धरणों से सहायता लेकर और उसी न्यायालय के पूर्ववर्ती खण्ड न्यायपीठ के विनिश्चय को विचित्र रूप से प्रभेदित करके ऐसा ही किया है। यह ऐसी प्रक्रिया है जो विनम्र शब्दों में, सामंजस्य, अनुशासन और विधि के शासन के अनुरूप नहीं है। आश्चर्य इस बात का है कि विधि को वस्तुगत बनाने के लिए प्रशिक्षित बुद्धि ने बहुत विरोधी निष्कर्ष किस प्रकार निकाले है।

14. 'आभासिक युक्ति' और 'सम्पूरक की बजाय अनुपूरक युक्ति' जैसी अभिव्यक्तियों से पथभ्रष्ट होने की सम्भावना रहती है। शब्द विवाद एक कूट विधिक व्यापार है। शब्द विषयक सूक्ष्मता न्यायालयों के लिए भटके हुए नाविक का दिशासूचक यन्त्र है और तीन महान कार्यकारियों को अन्ततोगत्वा राष्ट्र के न्याय क्षेत्र में उत्तर देना होता है। सांविधानिक शक्ति की सीमाओं का पता लगाने की दृष्टि से निर्वचनात्मक कठिनाइयों का सही उपचार इतना ही जटिल है जितना कि उन लोगों का उभयभावी दृष्टिकोण और आर्थिक अनुमान है जो संकेतों [को] देखते और उनके अर्थ लगाते हैं। शेक्सपियर ने अजान में ही न्याय के क्षेत्र में प्रवेश किया, "हैरी तुम्हारी इच्छा विचार की जननी थी" (हैनरी IV सीन 5)। हमारे मतानुसार यदि भाषा अनुज्ञात करे तो सर्वोच्च संदेश की प्रस्तावना में प्रकट किए गए न्याय के त्रिपक्षीय रूपों को, सूचीबद्ध प्रविष्टियों के भारी महत्व के साथ पढ़ते हुए दृष्टि में रखकर कानून की साम्या को देखना और विधि के न्यायिक उद्देश्य को समझना सांविधानिक अर्थान्वियन की सही कुंजी है। यदि उसके बाद हम इस प्रोग्राम पर, सांविधानिक उपधारणा को ऊपर से जोड़कर, न्यायिक दृष्टि से विचार करें तो परिणाम हमें यह बता देता है कि विधि शक्तिबाह्य है या नहीं। आनुषंगिक और प्रांसगिक शक्तियों का सिद्धान्त भी निर्वचन की इस स्कीम के अन्तर्गत आ जाता है।

15. इस न्यायालय की सुसंगत नजीरों की श्रृंखला पर दृष्टिपात करना उचित रहेगा। यदि हम सांवधानिक और सांविधानिक से विलग करने वाली विधिक कसौटी को संक्षेप में कहें तो मूल विनिश्चयाधार यह है कि यदि विधान का अभिप्राय, किन्हीं भी शब्दों में, ऐसे संग्रहों को ले लेने का है जो वास्तव में विक्रय कर नहीं थे, अपितु इस प्रकार किए गए ऐसे विधि-विरुद्ध संग्रह थे मानो विक्रय कर शोध्य हो और जो व्यवहारी द्वारा कीमत के साथ प्रभारित किए गए थे, तो स्वत्वहरणकारियों का ऐसा स्वत्वहरण (नैतिक रूप से, किन्तु बढ़ा-चढ़ा कर राज्य के पक्ष में करने पर) प्रविष्टि 54 से बाहर था और इसलिए शक्तिबाह्य था। इसके विपरीत विक्रय कर का उद्ग्रहण करने के लिए सक्षम विधानमण्डल की आनुषंगिक शक्तियों के क्षेत्र के अन्तर्गत होने के कारण सभी वास्तविक दण्डात्मक उपाय, जिनमें अधिक संग्रहों का अधिहरण करने की शास्ति सम्मिलित है, विधिमान्य हैं। इसलिए धारा 37 (1) (ए) में दण्डात्मक अधिरोपण वैध और विधिमान्य है। यदि हम इस

कसौटी को स्वीकार कर लें तो जहां तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है अपीलें निश्चय ही सफल होंगी।

16. विनिश्चयों पर, उनमें अधिकथित सिद्धान्त का पता लगाने के लिए, दृष्टिपात करने से पूर्व हम 'आभासिक युक्ति' पर आधारित उस दलील को निपटना चाहेंगे जिससे उच्च न्यायालय प्रभावित हुआ है। निश्चय ही, यह अभिव्यक्ति दोषात्मक है और यदि इसका विधानमण्डल जैसे प्रतिनिधि कार्यकारी पर घातक प्रभाव पड़ता है तो इस पर गम्भीर विचार अपेक्षित है। यदि शिष्टता को भूल कर विधायी पक्ष न्यायिक पक्ष पर 'आभासिक' निर्णयों का आरोप लगाता है तो यह असहनीय रूप से विधि के शासन के लिए घातक होगा। इसलिए हमें भी आत्यन्तिक रूप से स्पष्ट मामलों को छोड़कर यह आरोप लगाने से अपने को रोकना होगा और लोक शक्ति, विशेष रूप से विधायी शक्ति के आभासिक प्रयोग के सिद्धान्त के आशय को समझने का प्रयास करना होगा। विधि की इस शाखा में 'आभासिक' में 'दुर्भाव' या बुरे हेतुक का पुट नहीं है। यह अपकर्षक या गढ़ा हुआ नहीं होता है। सकल्पात्मक रूप से 'आभासिकता' असक्षमता से जुड़ी होती है। ब्लैक की लीगल डिक्शनरी के अनुसार 'आभास' का अर्थ 'वास्तविक से भिन्न रूप में प्रतीति, समता या प्रतिनिधिरूप है * * * * * जो भ्रामक प्रतीति होती है * * * * * जिसमें वास्तविकता का अभाव होता है।' कोई भी बात उस समय आभासिक होती है जब वह वास्तव में वह नहीं होती जो आशयित होती है, अपितु केवल वैसी प्रतीत होती है। भारतीय भाषा में यह माया है। शक्ति के विधिशास्त्र में, विधायी शक्ति का आभासिक प्रयोग या कपट अथवा अधिक भयानक रूप में संविधान के साथ कपट, ऐसी अभिव्यक्तियां हैं जिनका केवल यह अभिप्राय है कि विधानमण्डल विधि विशेष को अधिनियमित करने में अक्षम है, यद्यपि इस पर सक्षमता का लेबल लगा दिया गया है और तब यह आभासिक विधान है। यह उल्लेख करना बहुत महत्वपूर्ण है कि यदि विधानमण्डल विधि विशेष को पारित करने के लिए सक्षम है तो वे हेतुक वास्तव में असंगत हैं जिनसे वह विधि को पारित करने के लिए प्रेरित हुआ। इस बात को विचाराधीन मामले में अधिक सुसंगत रूप से कहें तो यदि कोई विधान, जो प्रकटतः सूची की किसी एक प्रविष्टि के अधीन अधिनियमित किया गया है, स्पष्ट सत्य और तथ्य के अनुसार उस प्रविष्टि की अन्तर्वस्तु के अन्तर्गत नहीं आता, अपितु ऐसी अन्य प्रविष्टि के

अन्तर्गत आता है जो किसी अन्य विधानमण्डल को सौंपी गई है, तो उसे हेतु अत्यधिक प्रशंसनीय होने पर भी आभासिक के रूप में अवैध ठहराया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, विधि की भाषा जो भी हो, विधि का सार और तत्व क्या है? क्या वह सार और तत्व के अनुसार उस विधानमण्डल को दी गई किसी प्रविष्टि के अन्तर्गत आती है या उस प्रविष्टि में विवक्षित आनुषंगिक शक्तियों के अन्तर्गत आती है? क्या विधि को युक्तियुक्त रूप से इस प्रकार पढ़ा जा सकता है कि वह विधानमण्डल की सांविधानिक शक्तियों के भीतर आ जाए? यदि इन प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक दिया जा सकता है तो विधि विधिमान्य है। दुर्भाव या हेतु असंगत बात है और दुर्भावना के आधार पर संसदीय अक्षमता का सुझाव अनुज्ञेय नहीं है।

17. इतनी विधि सुस्थिर है। इसलिए यदि हमारे समक्ष अपीलों में व्यवहारी अधिनियमिति में आभासिकता का दोष होने का आरोप लगाते हैं तो उन्हें यह सिद्ध करना होगा कि सार और तत्व के अनुसार आक्षेपित विधि सूची 2 की प्रविष्टि 54, सपठित प्रविष्टि 64, के अन्तर्गत नहीं आती, आनुषंगिक शक्तियों के विस्तृत अर्थ के अन्तर्गत भी नहीं आती और प्रयोग की गई कुछ विस्तृत अभिव्यक्तियों को पढ़ने पर भी विधि को बचाना सम्भव नहीं है। प्रस्तुत मामले में संक्षिप्त विवाद्यक इस बारे में है कि क्या धारा 37 (1) अधिहरण खण्ड में आभासिकता के दोष के कारण अनुचित है। यदि यह धन-सम्बन्धी विधान के प्रवर्तन में लोक-हित की संरक्षा का दाण्डिक उपाय है तो यह पूर्ण रूप से विवक्षित शक्तियों के अन्तर्गत आ जाता है। इसलिए श्री काजी द्वारा इस सूक्ष्म बात पर जोर दिया गया है कि 'अधिहरण' अभिव्यक्ति व्यापारियों से ऐसी धनराशियां छीनने की उस गुप्त युक्ति को जुटाने के लिए आडम्बरयुक्त वर्णन है जिसे अधिहरण की युक्ति के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। स्पष्ट तथ्य की दृष्टि से यह शास्ति का उपाय नहीं है, अपितु ऐसी अवैध बात को करने का गुप्त ढंग है जो विधानमण्डल की वैध पहुंच के परे है। इसलिए हमें इस न्यायालय के विनिश्चयों को दृष्टि में रखते हुए इस संक्षिप्त विषय पर विचार करना होगा।

18. अब हम 'अधिहरण' को लेते हैं। अधिहरण का वास्तविक स्वरूप क्या है? क्या यह दाण्डिक है या किसी एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति से धन लेने का केवल एक और ढंग है? यदि यह दाण्डिक है तो यह विवक्षित शक्तियों के अन्तर्गत आता हैं। यदि यह केवल व्यवहारी से राज्य को धन

1977(8) eILR(PAT) SC 16

अन्तरित करने का कार्य है तो यह विधायी प्रविष्टि के अन्तर्गत नहीं आता। यह उन विनिश्चयों का सार है जिन पर हम अब विचार करेंगे। यह दलील दी गई थी कि 'अधिहरण' का अर्थ शास्ति नहीं है। सम्भवतः इसका विनिश्चय कानून विशेष के विनिर्दिष्ट संदर्भ को ध्यान में रखकर करना होगा। किन्तु साधारणतया और धारा 37, सपठित धारा 46, के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हम इस मत के लिए उन्मुख हैं कि अधिहरण का प्रभाव दाण्डिक होता है। ब्लैक की लीगल डिक्शनरी में कहा गया है कि 'अधिहरण' होने का अर्थ किसी गलती, व्यतिक्रम, अपराध या जुर्म के द्वारा 'खो देना, के प्रति अधिकार को खो देना या शास्ति उपगत करना' है। न्यायिक दृष्टि से 'अधिहरण' 'किसी विधि-विरुद्ध कार्य या उपेक्षा से विधि द्वारा उपाबद्ध दण्ड है'। 'किसी अपराध या अवचार के लिए दण्ड के रूप में अधिरोपित अधिरोपण है।' इस अर्थ में इस शब्द को प्रायः 'शास्ति' शब्द से सहबद्ध किया जाता है। ब्लैक की लीगल डिक्शनरी के अनुसार

> " 'जुर्माना', 'अधिहरण' और 'शास्ति' पदों का प्रायः मुक्त रूप से और एक दूसरे के अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है किन्तु जब इनमें विभेद किया जाता है तब 'शास्ति' का स्वरूप सामान्य हैं, जिसके अन्तर्गत जुर्माना और अधिहरण दोनों आ जाते हैं। 'जुर्माना', धन विषयक शास्ति है और सामान्यतः (सम्भवतः सदैव) किसी न किसी रूप में वाद द्वारा संगृहीत की जाती है। 'अधिहरण' ऐसी शास्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी सम्पत्ति में अपने अधिकार और हित को खो देता है।"

अमेरिका की सुप्रीम कोर्ट ने 'अधिहरण' की संकल्पना को कानूनी अर्थान्वयन के संदर्भ में और भी अधिक स्पष्ट रूप से बताया है। **स्टेट ऑफ मेरिलैण्ड** बनाम **बाल्टिमोर एण्ड ओहियो आर० आर० कम्पनी**[1] में मुख्य न्यायाधिपति टेने ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:—

> "और प्रस्तुत मामले की तरह के इस उपबन्ध को कि यदि पक्षकार विधि द्वारा अपेक्षित कार्य नहीं करता तो उसकी कुछ धनराशि का अधिहरण हो जाएगा, कानूनों के अर्थान्वयन में, सदैव अवचारी पक्षकार के साथ संविदा के रूप में नहीं, अपितु अपराध के लिए दण्ड के रूप में समझा गया है। निस्संदेह, व्यष्टियों के मामले में अधिहरण

---

[1] 11 लॉयर्स इडिशन 714.

शब्द का अर्थान्वयन संविदा की भाषा के रूप में किया गया है क्योंकि संविदा ही ऐसा एकमात्र ढंग है जिससे कोई व्यक्ति कर्तव्य-भंग के लिए या बाध्यता का पालन न करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को शास्ति का संदाय करने के दायित्वाधीन हो सकता है। तथापि विधायी कार्यवाहियों में अर्थान्वयन भिन्न होता है और अधिहरण को सदैव विधि द्वारा पक्षकार पर डाले गए किसी कर्तव्य के उल्लंघन के लिए आशयित दण्ड समझा जाता है और विचाराधीन अधिनियम में इस शब्द का बिल्कुल स्पष्ट रूप से यही अर्थ है।"

19. हमारे न्यायालय द्वारा भी यही अर्थ लगाया गया है। एक खण्ड न्यायपीठ ने **बांकुरा नगरपालिका** बनाम **लालजी राजा एण्ड सन्स**[1] में अभिनिर्धारित किया है:—

> " 'अधिहरण' शब्द के शब्दकोषीय अर्थ के अनुसार माल की हानि या उससे वंचन जुर्म, अपराध या वचन-भंग के परिणामस्वरूप होना चाहिए या अतिलंघन के लिए शास्ति अथवा अपराध के लिए दण्ड के रूप में होना चाहिए। यदि माल की हानि या वंचन जुर्म, अपराध या वचन-भंग के लिए शास्ति या दण्ड के रूप में न हो तो यह अधिहरण की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आएगा।"

इस प्रकार "अधिहरण" शब्द का अर्थ वही होना चाहिए जो निषेधात्मक निदेश को भंग करने के लिए शास्ति का है। यदि यह मान भी लिया जाए कि व्यवहारियों द्वारा किए गए विधि-विरुद्ध संग्रहों के अंकों और राज्य को अधिहरण हुई रकमों के बीच गणितीय समानता है तो भी इस तथ्य से यह संकल्पनात्मक भ्रान्ति नहीं हो सकती कि जिसका उपबन्ध किया गया है वह दण्ड नहीं है अपितु निधियों का अन्तरण है। यदि यह मत सही है और हम ऐसा अभिनिर्धारित करते हैं तो विधानमण्डल अधिहरण आरोपित करके उस दशा में सीमा रेखा से बाहर नहीं जाता जब वह व्यवहारी पर आघात करता है और विधि की शास्ति द्वारा उसे ग्राहकों से विधि-विरुद्ध रूप से एकत्रित रकम से वंचित कर देता है। भारत में दण्ड प्रक्रिया संहिता, सीमा-शुल्क और उत्पाद-शुल्क विधियां तथा अनेक अन्य दाण्डिक कानूनों में अधिहरण को शास्ति के रूप में स्वीकार करने वाले सिद्धान्त का प्रयोग किया

---

[1] ए० आई० आर० 1953 एस० सी० 248.

1977(8) eILR(PAT) SC 16

गया है। इस न्यायालय की नजीरों पर विचार करते समय हम इस बात का पता लगाएंगे कि क्या 'अधिहरण' के इस सही स्वरूप का धारा 37 (1), 46 या 63 की किसी बात द्वारा खन्डन किया गया है। इस सम्बन्ध में भी हम इस विचार को नामंजूर करते हैं कि शास्ति या दण्ड आत्यंतिक या व्यतिक्रम रहित दायित्व के रूप में आरोपित नहीं किया जा सकता अपितु इससे पूर्व आपराधिक मनःस्थिति होना अनिवार्य है। यह पौराणिक मत की आपराधिक मनःस्थिति न हो तो अपराध नहीं होता, बहुत पहले समाप्त हो गया है और भारत तथा विदेशों में अनेक विधियों में, विशेष रूप से, आर्थिक अपराधों और विभागीय शास्तियों के सम्बन्ध में, उस दशा में भी कठोर दण्डों का सृजन किया गया है जिसमें अपराधों की परिभाषा आपराधिक मनःस्थिति को अपवर्जित कर के करनी पड़ी है। इसलिए यह दलील कि धारा 37 (1) में व्यतिक्रम का विचार किए बिना भारी दायित्व डाला गया है, अधिहरण को शास्ति के स्वरूप से वंचित करने के लिए बलहीन है।

20. अब हम उन पूर्व निर्णयों को देखेंगे जो विभिन्न राज्यों की विक्रय कर विधियों के सम्बन्ध में वर्षों से होते आए हैं, इन विधियों का ढांचा भिन्न-भिन्न है, किन्तु व्यवहारियों पर वित्तीय प्रभाव एक ही है। यद्यपि **अशोक मार्केटिंग लिमिटेड**,[1] और **अन्नपूर्णा बिस्कुट मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी**[2] वाले मामले अन्य मामलों के साथ-साथ सुसंगत विनिश्चय हैं, तथापि **अब्दुल कादिर वाला मामला**[3] महत्वपूर्ण है। यद्यपि पहले के विनिश्चय भी हैं, तथापि हमारे लिए **अब्दुल कादिर वाले मामले**[3] से आरम्भ करना उचित होगा। उस मामले में अपीलार्थी व्यवहारी ने पान के पत्तों के क्रेताओं से विक्रय कर का संग्रह किया था, किन्तु इस प्रकार संगृहीत रकम सरकार को नहीं दी थी। जब कर प्राधिकारियों ने अपीलार्थी को उक्त रकम खजाने में जमा करने का निदेश दिया तब उसने हैदराबाद जनरल सेल्स टैक्ट ऐक्ट, 1950 की धारा 11 (2) की विधिमान्यता को, जिसका सरकार ने निदेश देने के लिए प्राधिकार के रूप में अवलम्ब लिया था, प्रश्नगत करते हुए रिट पिटीशन फाइल किया। माननीय न्यायाधिपति वांचू ने इस न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए समस्या

---

1 (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930.

2 (1973) 3 एस० सी० आर० 987=[1973] 3 उम० नि० प० 351.

3 (1964) 6 एस० सी० आर० 867.

और उसके समाधान को बहुत साफ-साफ बताया है। हम उस अंश को उद्धृत कर देते हैं जिसमें प्रश्न निर्धारित किया गया है और उसका उत्तर दिया गया है——

> "इसलिए प्रथम विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य विधान-मण्डल को इस आशय का उपबन्ध करने की छूट थी कि कर के रूप में संगृहीत धनराशि, अधिनियम के अधीन कर के रूप में शोध्य न होने पर भी सरकार को दी जाएगी। यह स्पष्ट है कि कर के रूप में इस प्रकार संगृहीत धनराशियां वास्तव में अधिनियम के अधीन वसूल किया जा सकने वाला कर नहीं है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य विधानमण्डल ऐसा उपबन्ध करते समय सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन प्रत्यक्ष रूप से विक्रय या क्रय कर अधिरोपित करने के लिए विधि बना रहा था, क्योंकि उपबन्ध के अनुसार रकम कर के रूप में संगृहीत की गई होने पर भी विधि के अधीन कर के रूप में वसूल की जा सकने योग्य नहीं थी। किन्तु इस उपबन्ध को इस आधार पर न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया गया है कि यद्यपि राज्य विधानमण्डल की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन इस प्रयोजन के लिए बनाई गई विधि में ऐसी रकम की वसूली के लिए उपबन्ध करने की छूट नहीं थी जो कर नहीं है, तथापि विधानमण्डल को व्यक्तियों द्वारा कर के रूप में संगृहीत सभी रकमों के संदाय के लिए उपबन्ध करने की छूट है चाहे वे वास्तव में कर के रूप में वसूल को जा सकने योग्य नहीं हैं। यह ऐसे कर के उद्ग्रहण और संग्रह के लिए उपबन्ध करने की आनुषंगिक और गौण शक्ति का अंग है। इस विषय में कोई विवाद नहीं है कि अनुसूची के शीर्षों का इतना विस्तृत निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे उनके अन्तर्गत वे सभी विषय आ जाएं जो उसमें उपवर्णित विषयों के आनुषंगिक स्वरूप के हों। फिर भी सप्तम अनुसूची में विद्यमान विभिन्न सूचियों की विधायी प्रविष्टियों से उत्पन्न होने वाली ऐसी आनुषंगिक या गौण शक्ति की सीमाएं हैं। ये आनुषंगिक या गौण शक्तियां विधि के मुख्य विषय की सहायता के लिए प्रयोग की जानी होती हैं, जो प्रस्तुत मामले में माल के विक्रय या क्रय पर कर हैं। सम्बन्धित कर के उद्ग्रहण और संग्रह के लिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि कर का अपवंचन

1977(8) eILR(PAT) SC 16

न हो, सभी शक्तियां विधायी प्रविविष्ट के विषय-क्षेत्र में, आनुषंगिक या गौण शक्तियों के रूप में, आ जाती है। किन्तु जहा सुसंगत प्रविष्टि के अधीन विधायन इस आधार पर होता है कि सम्बन्धित रकम उस प्रविष्टि के अधीन बनाई गई विधि के अधीन वसूल करने योग्य कर नहीं है, किन्तु फिर भी उसमें यह अधिकथित होता है कि यद्यपि यह विधि के अधीन वसूल किए जाने योग्य नहीं है, तथापि इसका सरकार को केवल इसलिए संदाय किया जाएगा कि कुछ व्यवहारियों ने गलती से या अन्यथा इसका कर के रूप में संग्रह किया है, वहां यह समझना कठिन है कि ऐसा उपबन्ध सुसंगत कराधान प्रविष्टि के अधीन बनाई गई विधि के अधीन उचित रूप से शोध्य कर के संग्रह का आनुषंगिक या प्रासंगिक कैसे हो सकता है। हमारा यह विचार है कि आनुषंगिक या प्रासंगिक शक्ति का विषय-क्षेत्र विधानमण्डल को यह उपबन्ध करने के लिए अनुज्ञात करने तक विस्तृत नहीं है कि यद्यपि अनुचित रूप से कर के रूप में संगृहीत रकम सुसंगत कराधान प्रविष्टि के अधीन बनाई गई विधि के अधीन वसूली योग्य नहीं है तथापि इसका संदाय सरकार को इस प्रकार किया जाएगा मानो यह कर है। सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन विधानमण्डल इस आशय का उपबन्ध नहीं कर सकता कि यद्यपि संग्रह की गई कुछ रकम विधि में अधिकथित रूप से माल के विक्रय या क्रय पर कर नहीं है, तथापि इसका इस प्रकार संग्रह किया जाएगा मानो यह कर है। धारा 11 (2) में यही उपबन्ध किया गया है। हमारी राय है कि ऐसा उपबन्ध उन आनुषंगिक या प्रासंगिक शक्तियों के अन्तर्गत आने वाला नहीं माना जा सकता जो विधानमण्डल को सुसंगत कराधान प्रविष्टि के अधीन यह सुनिचित करने के लिए प्राप्त है कि कर का उद्ग्रहण और संग्रह हो जाए और उसका अपवंचन असम्भव हो जाए। इसलिए हमारी राय है कि धारा 11 (2) में विद्यमान उपबन्ध सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन नहीं बनाया जा सकता और इसे उस प्रविष्टि के अधीन अनुज्ञात आनुषंगिक या प्रासंगिक उपबन्ध के रूप में न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।"

न्यायालय ने आगे उपबन्ध को शास्ति के लिए उपबन्ध करने वाले के रूप में न्यायोचित ठहराने के प्रयत्न का उल्लेख किया किन्तु उसे आक्षेपित धारा 11 की उपधारा (2) को अधिनियम के अधीन निषिद्ध बात के

भंग के लिए शास्ति के रूप में न्यायोचित ठहराने के लिए उसकी भाषा में कुछ नहीं मिला। इसके विपरीत कानून के संदर्भ में, न्यायालय ने निम्नलिखित प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला--

"हमारी राय है कि धारा 11(2) का शास्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं है और इसे व्यवहारी पर शास्ति के रूप में न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। वास्तव में, धारा 20 के खण्ड (बी) में धारा 11(1) के भंग के मामले में शास्ति के लिए उपबन्ध किया गया है और उस उपबन्ध को भंग करने वाले व्यक्ति को, प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा सिद्धदोष ठहराए जाने पर, जुर्माने....के दायित्वाधीन किया गया है। इस सम्बन्ध में हम धारा 20 के खण्ड (सी) का उल्लेख करना चाहेंगे जिसमें यह उपबन्ध है कि यदि कोई व्यक्ति 'धारा 11 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट रकमों का संदाय विहित समय के भीतर करने में' असफल रहेगा तो वह, मजिस्ट्रेट द्वारा दोषसिद्ध किए जाने पर, जुर्माने के दायित्वाधीन होगा। यह उल्लेखनीय है कि इस उपबन्ध में व्यक्ति को उस रकम का संदाय करने में उसकी असफलता के लिए दण्डनीय किया गया है जो विधि के अधीन सरकार को कर के रूप में बिल्कुल भी प्राधिकृत नहीं है। इसमें क्रेताओं से कर के रूप में अनुचित रूप से रकम का संग्रह करने के लिए शास्ति का उपबन्ध नहीं है जो कराधान विधान के उद्देश्यों की पूर्ति के प्रयोजन से शास्ति के रूप में न्यायोचित हो सकता था। यदि किसी व्यवहारी ने क्रेता से ऐसी रकम का संग्रह किया है जो कराधान विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं है तो वह मामला उसके और क्रेता के बीच का है और क्रेता व्यवहारी से उस रकम को वसूल करने का हकदार हो सकता है। किन्तु यदि इस प्रकार संगृहीत धनराशि कर के रूप में शोध्य नहीं है तो राज्य केवल इसलिए इसे विधि द्वारा वसूली योग्य नहीं बना सकता कि व्यवहारी ने इसका अनुचित रूप से संग्रह किया है। प्रत्यक्ष रूप से ऐसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अर्थ में कर बिल्कुल नहीं है और राज्य विधानमण्डल आनुषंगिक या प्रासंगिक शक्ति के बहाने अप्रत्यक्ष रूप से वह बात नहीं कर सकता

जो वह प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकता।" (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है।)

21. निर्णायक विनिश्चयाधार रेखांकित उद्धरण में है। यदि क्रेताओं से कर के रूप में अनुचित रूप से रकम संगृहीत करने के विरुद्ध निषेध सहित शास्ति, जिसमें अधिहरण सम्मिलित है, होती तो यह कराधान विधान के उद्देश्यों की पूर्ति के प्रयोजन से शास्ति के रूप में न्यायोचित होती। एक अर्थ में **अब्दुल कादिर वाले मामले**[1] में व्यापारियों से वसूली योग्य न होने पर व्यापारियों द्वारा कर के रूप में संगृहीत धनराशियों को केवल अपने हाथ में ले लेने में (जो ऐसा उपबन्ध है जिसके लिए सूची 2 की प्रविष्टि 54 द्वारा, उसका विवक्षित शक्तियों के सिद्धांत द्वारा विस्तार करने पर भी, राज्य को शक्ति नहीं दी गई है) और कराधान कानून को कार्यान्वित करने और सार्वजनिक क्षति को रोकने के लिए शास्ति द्वारा, जिसमें विधि-विरुद्ध रूप से वसूल की गई धनराशियों का अधिहरण सम्मिलित है, पुलिस कार्य करने के बीच सांविधानिक अन्तर को सीमांकित किया गया है।

22. अब हम **अशोक मार्केटिंग कम्पनी वाले मामले**[2] को लेते हैं जिसमें इस न्यायालय ने उस उपबन्ध से कुछ भिन्न उपबन्ध पर विचार किया था जिस पर **अब्दुल कादिर वाले मामले**[1] में विनिश्चय किया जाना था। पश्चात्कथित मामले में इस निदेश का उपबन्ध था कि अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार संगृहीत किए जाने के अतिरिक्त कर के रूप में रकम का संग्रह करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने द्वारा इस प्रकार संगृहीत रकम का संदाय सरकार को कर देगा। यह व्यवहारी द्वारा संगृहीत धनराशि का निपट अभिग्रहण था, क्योंकि कोई निषेध, कोई शास्ति या सरकार पर धनराशियां उन क्रेताओं को वापिस करने की कोई बाध्यता नहीं थी जिनसे वे धनराशियां ली गई थीं। **अशोक मार्केटिंग कम्पनी वाले मामले**[2] में धारा 20ए का उपबन्ध कुछ अधिक था। विधि-विरुद्ध रूप से संगृहीत धनराशियों को सरकारी खजाने में जमा कराने के अतिरिक्त यह उपबन्ध था कि

---

1 (1964) 6 एस० सी० आर० 867.

2 (1970) 3 एस० सी० आर० 475=[1974] 3 उम० नि० प० 930.

ऐसी रकमें राज्य सरकार द्वारा उन व्यक्तियों के लिए न्यास में रखी जाएंगी जिनसे व्यवहारियों द्वारा वे वसूल की गई थीं और स्वयं व्यवहारी इन धनराशियों को सरकारी खजाने में जमा कराने के पश्चात् क्रेताओं को धनराशियों की वापिसी के अपने दायित्व से मुक्त हो जाएंगा। यह आनुषंगिक निदेश भी था कि व्यथित क्रेताओं द्वारा दावा किए जाने पर इन धनराशियों का प्रतिदाय कर दिया जाएगा। धारा 20-ए के खण्ड (8) की स्कीम में यह स्पष्ट किया गया था कि विधायन लोक हित में है और व्यवहारी के विरुद्ध बड़ी संख्या में ग्राहकों द्वारा छोटी-छोटी धनराशियों की वसूली के लिए वाद अनंत और खर्चीली मुकदमेबाजी को जन्म देंगे जबकि सम्बन्धित क्रेताओं द्वारा आवेदन किए जाने पर उन धनराशियों की वापिसी की सरल प्रक्रिया व्यवहारियों को उनके अनुचित लाभों से वंचित करने के साथ-साथ सामान्य क्रेताओं की संरक्षा करेगी। हमारे विचार से यह स्पष्ट रूप से उपभोक्ता के संरक्षण का उपाय था। न्यायाधिपति शाह ने, न्यायालय की ओर से बोलते हुए अभिनिर्धारित किया कि इस लोकधन हित के प्रयोजन से सांविधानिक अशक्तता भंग नहीं हुई और निम्नलिखित विनिर्णय दिया--

> "राज्य विधानमण्डल सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन माल के विक्रय और क्रय पर कर से आवश्यक रूप से आनुषंगिक विषयों की बाबत विधि अधिनियमित करने के लिए सक्षम हो सकता है। किन्तु हमारे विचार से किसी व्यवहारी को, जिसने जानबूझकर या गलती से यह व्यपदेशन करके क्रेता से रकम वसूल की है कि वह कर के संदाय के लिए अपनी क्षतिपूर्ति के लिए उसकी वसूली का हकदार है, उस रकम का सरकार को संदाय करने के लिए विवश करने वाला उपबन्ध उस कर के रूप में रकम के उदग्रहण से आवश्यक रूप से आनुषंगिक नहीं समझा जा सकता जिसके उद्ग्रहण के लिए राज्य अक्षम है। राज्य के पास वह धनराशि जमा करने के लिए, जिसे व्यवहारी ने संगृहीत किया है किन्तु जिसका संग्रह करने के लिए वह हकदार नहीं था, मांग के रूप में दावे को प्रस्तुत करके संविधान के उपबन्धों को विफल करने वाली युक्ति अनुज्ञात नहीं की जा सकती।"

इस विनिश्चय के पश्चात् **अन्नपूर्णा वाले मामले**[1] में एक लघुतर न्यायपीठ का विनिश्चय हुआ था जिसमें कोई अतिरिक्त कारण नहीं दिए गए थे।

23. **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[2] में न्यायपीठ ने **ओरियण्ट पेपर मिल्स वाले मामले**[3] का अनुसरण हीं किया जिसमें लगभग उसी प्रकार के उपबन्धों पर आक्षेप किया गया था किन्तु उसे निम्नलिखित मताभिव्यक्ति द्वारा नकाल दिया गया था।

> "इसलिए उड़ीसा राज्य का विधानमण्डल अनुचित रूप से या विधिविरुद्ध रूप से संगृहीत कर के प्रतिदाय को मंजूर करने की गौण या आनुषंगिक विषय की बाबत शक्ति का प्रयोग करने के लिए सक्षम था और विधानमण्डल की इस निमित्त सक्षमता पर निर्धारितियों के काउन्सेल द्वारा जोर नहीं दिया गया है। यदि अनुचित रूप से संग्रहीत विक्रय कर के प्रतिदाय को मंजूर करने के लिए विधायन की सक्षमता को मान लिया जाए तो क्या यह घोषित करने की शक्ति को अपवर्जित करने का कोई कारण है कि प्रतिदाय का दावा केवल उसी व्यक्ति द्वारा किया जाएगा जिससे व्यवहारी ने वास्तव में विक्रय कर के रूप में या अन्यथा रकमें वसूल की हैं? हमारे विचार से ऐसा कोई कारण नहीं है।"

ओरियण्ट पेपर मिल्स वाले मामले[3], में इस अभिनिर्धारण के बावजूद न्यायालय के बृहत्तर न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि जनसाधारण से व्यवहारियों द्वारा कर के बहाने संग्रहीत धनराशियों को, इस प्रकार वंचित किए गए क्रेताओं को वापिस करने की एकमात्र दृष्टि से ले लिया जाना माल के विक्रय और क्रय पर कर के लिए आवश्यक रूप से आनुषंगिक नहीं था। हम इससे ससम्मान असहमत हैं।

24. विकासशील देश में, जिसमें अधिकतर लोग अशिक्षित और अति निर्धन हैं और अधिकतर सम्बन्धित वस्तुएं उनकी दैनिक आवश्यकताएं हैं, हमें कर लगाने की शक्ति और क्रेताओं को विधि विरुद्ध भार डाले जाने से संरक्षित करने की आनुषंगिक शक्ति के बीच पर्याप्त सम्बन्ध

---

[1] (1973) 3 एस० सी० आर० 987=[1973] 3 उम० नि० प० 351.

[2] (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930.

[3] (1962) 1 एस० सी० आर० 549.

1977(8) eILR(PAT) SC 16

प्रतीत होता है। सामाजिक न्याय खण्ड, जो कराधान उपबन्धों से अनन्य रूप से सम्बद्ध होते हैं, मात्र युक्ति या आनुषंगिकता रहित नहीं माने जा सकते। हम व्यवहारी के विक्रय कर के सम्बन्ध में राज्य के अभिकर्ता होने या न होने के विषय में दी गई दलील से भी प्रभावित नहीं हैं और राज्य पर उस दशा में संदेह क्यों किया जाना चाहिए जबकि वह धनराशियां क्रेताओं को वापिस करने की बाध्यता अपने ऊपर लेता है। हमारे विचार से सरकार की अपेक्षा सामान्य व्यवहारियों से छोटी-छोटी धनराशियां वसूल करना सामान्य क्रेताओं के लिए अधिक व्यवहार्य नहीं है। हमें आशा है कि बुद्धिमान सरकार बहकाने की अपेक्षा धनराशियां वापिस कर देगी। इसलिए हम अधिकतर **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[1] से असहमत हैं और साधारणतया **अब्दुल कादिर वाले मामले**[2] से सहमत हैं। हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि यह प्रश्न कि क्या ऐसी रकम का, जो विक्रयकर के रूप में विधि-विरुद्ध रूप से संग्रहीत की गई है, अधिहरण किया जा सकता है, **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[1] में विचार के लिए उत्पन्न नहीं हुआ था।

25. हम इस विचार के साथ उपसंहार कर सकते हैं कि संसद् और विधानमण्डल खर्चों और विलम्बों को कम करने वाली लोकहित के लिए उपयुक्त मुकदमेबाजी की प्रक्रिया शीघ्र प्रारंभ करेंगे। आखिरकार, अधिकारों की वास्तविकता नागरिकों द्वारा उनके वास्तविक उपभोग में है, न कि सैद्धान्तिक रूप से शानदार मंजूरियों में। मैकाले ने कहा था, 'यूटोपिया में जमींदारी की अपेक्षा मिडलसेक्स में एक एकड़ श्रेष्ठतर है।' प्रोफेसर सोवार्ट्स ने कहा है, 'समुदाय की सेवा करने वाली विधिक पद्धति सार्वजनिक आवश्यकताओं के लिए अनुपयुक्त प्लाटों के संरक्षकों के झुंड की साहित्यिक कल्पना से श्रेष्ठतर है'।[3]

---

[1] (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930.

[2] (1964) 6 एस० सी० आर० 867.

[3] बरनार्ड स्वार्टस: दि लॉ ऑफ अमेरिका, पृष्ठ 7, अमेरिकन हेरिटेज बाईसेंटिनियल सीरीज.

1977(8) eILR(PAT) SC 16

26. इस न्यायालय के उन विनिश्चयों पर, जो विवाद्य विषय से सुसंगत है, इस प्रक्रम पर विचार करना लाभदायक रहेगा। **कान्तिलाल बाबूलाल वाले मामले**[1] में ऐसे प्रश्न पर विचार किया गया था जो सारतः प्रस्तुत मामले में विचारार्थ हैं। सम्बन्धित अधिनियम (बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1946 का 5) में व्यवहारी द्वारा, 'यदि वह रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी और स्वयं कर का संदाय करने के दायित्वाधीन न हो तो' क्रेताओं से विक्रय-कर के रूप में रकमों का संग्रह किए जाने का निषेध करने के पश्चात् यह उपबन्ध किया गया था कि इस उपबन्ध के विपरीत संग्रह राज्य सरकार को अधिहृत हो जायेंगे। राजस्व ने दलील दी कि धारा 12-ए(4), जो 'अधिहरण' के सम्बन्ध में थी, विक्रय पर कर लगाने की शक्ति का आनुषंगिक दाण्डिक उपबन्ध था। न्यायालय ने अभिव्यक्त रूप से इस बात की जांच करने से इन्कार कर दिया कि क्या उपबन्ध दाण्डिक था। तथापि यह मान लिया गया था कि दाण्डिक उपबन्ध राज्य विधानमण्डल की विधायी सक्षमता में था और इसलिए समस्त विचार-विमर्श और एकमात्र विनिश्चयाधार अनुच्छेद 19(1)(च) के अभिकथित अतिक्रमण पर था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुच्छेद 19 का अतिक्रमण हुआ था, क्योंकि न्यायालय के मतानुसार अधिहरण खण्ड इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए कि क्या धारा 12-ए (1) और (2) का उल्लंघन किया गया था और यदि किया गया था तो किस हद तक किया गया था, मशीनरी और अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के बारे में मौन था। प्रतिक्रियात्मक युक्तियुक्तता का अभाव होने के कारण अनुच्छेद 19(1)(च) का उल्लंघन हुआ था। संक्षेप में सम्पूर्ण विनिश्चय विधि के प्रक्रियात्मक भाग के अनुच्छेद 19(1)(च), सपठित अनुच्छेद 19(5), के विरुद्ध होने पर केन्द्रित था। इसमें विधायी सक्षमता पर विचार नहीं किया गया था।

27. इस मामले के अतिरिक्त इस न्यायालय की अन्य नजीरें, जैसे **मानकलाल वाला मामला**[2], **जॉर्ज ओक्स वाला मामला**[3], **झावेरी वाला मामला**[4] और **अब्दुल्ला वाला मामला**[5], केवल नाममात्र के लिए सुसंगत

[1] (1968) 1 एस० सी० आर० 735.

[2] (1967) 3 एस० सी० आर० 65.

[3] (1962) 2 एस० सी० आर० 570.

[4] (1973) 2 एस० सी० आर० 691=[1973] 1 उम० नि० प० 469.

[5] (1971) 2 एस सी० आर० 817=[1971] 1 उम० नि० प० 343.

हैं। हमने इन उद्धरणों को सुना है, उनका परिशीलन किया है और उन पर विचार किया है, तथापि हमने उनकी इस निर्णय में विनिर्दिष्ट उल्लेख की दृष्टि से जांच की है, क्योंकि काउन्सेल ने इन विनिश्चयों को इन निर्णयों में व्यक्त किए गए कुछ विश्रृंखलित विचारों के महत्व को बताने के लिए उद्धृत किया है जिनका केवल उपान्तिक महत्व है।

28. हमारा यह समाधान कराने के लिए कि स्वयं उपधारा में शास्ति और अधिहरण के बीच भेद किया गया है और यह सुझाव देते हुए कि अधिहरण को शास्ति नहीं माना गया, अधिनियम की धारा 37(1) की भाषा के अर्थान्वयन के विषय में कुशल निवेदन किए गए थे। इस विचार को परिपुष्ट करने के लिए कुछ अन्य धाराओं का प्रासंगिक रूप से उल्लेख किया गया था। निर्धारिती द्वारा अधिहरण और विधि-विरुद्ध संग्रह में समानता को, यह दलील देने के लिए कि यह शास्ति नहीं हो सकती, स्पष्ट परिस्थिति के रूप में बताया गया था। इसके अतिरिक्त धारा 37(1)(ए) में व्यक्त शास्ति की उच्चतम सीमा थी जबकि अधिहरण असीमित था। एक पैसे के बराबर शास्ति और एक रुपए के बराबर अधिहरण से यह साबित होता था कि स्वयं कानून में अधिहरण का शास्ति होना अभिप्रेत नहीं था। शब्द, वाक्य रचना और संरचना की दृष्टि से इस निवेदन के विषय में कुछ कहा जा सकता है। किन्तु विषय का सार यह है कि धारा में अकलात्मक रूप से वर्णित अधिहरण स्पष्ट रूप से दाण्डिक है, न कि निपट रूप से समपहरणकारी।

29. पार्श्व टिप्पण, जो संदिग्ध स्थितियों में कुछ प्रकाश डाल सकता है, अधिहरण को भी शास्ति मानता है। दूसरे, कानून के शब्द सप्रयोजन संकेत हैं जिनका सीधा और स्पष्ट अर्थ निकाला जाना है, न कि शब्दों के उपरान्त शब्दों को प्रकट करके। इसलिए, जब धारा 37(1) में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि अनुचित संग्रहों का अधिहरण कर लिया जाएगा, तब उसका वही अभिप्राय है जो इसमें कहा गया है। अधिहरण शब्दावली की दृष्टि से दाण्डिक होने के कारण उसका यहां भी वहीं अर्थ लगाया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जहां तक 1959 वाले अधिनियम का सम्बन्ध है, किसी पूर्ववर्ती न्यायिक विनिर्णय से आगे निकलने का कोई मामला नहीं बनता। ये तथ्य कि आपराधिक मनःस्थिति अपवर्जित कर दी गई है और दाण्डिक अधिहरण

विशाल हो सकता है, विधायी नीति के अनुरूप हैं और उन पर न्यायिक सहृदयता की गुंजाइश नहीं है। अधिहरण के बिना सीमित शास्ति ऐसी स्थिति में काल्पनिक सिद्ध हो सकती है जब विधि-विरुद्ध संग्रह करोड़ों रुपयों के हों। अनिवार्य निष्कर्ष यह है कि धारा 37(1) में अधिहरण सक्षम विधि है।

30. अनुच्छेद 19(1)(च) और 14 का उल्लंघन करने के हल्के से आरोपों पर विचार करने से पूर्व हम यह कहना चाहेंगे कि श्री नरीमन की समस्या को नए दृष्टिकोण से देखने के आग्रह पर, हमारे द्वारा अपनाए गए मत को देखते हुए, विचार करने की आवश्यकता नहीं है। महाराष्ट्र राज्य, जिसकी ओर से वह उपस्थित हुए हैं, मध्यक्षेपी है और महाराष्ट्र वाली विधि में साम्या का श्रेष्ठतर स्वरूप है, क्योंकि व्यवहारी को क्रेताओं के दावे से मुक्त कर दिया गया है और सरकार ने उन्हें प्रतिदाय करने का स्पष्ट जिम्मा ले लिया है। हमें आशा है, कि गुजरात राज्य केवल अधिहरण के लिए ही नहीं अपितु व्यवहारी और क्रेता के साथ न्याय के लिए भी विधि बनाएगा। हमें आशा है कि वह राज्य निष्क्रियता के सम्भावित परिणामों की, जिन पर हम विचार नहीं कर रहे हैं, अनदेखी नहीं करेगा।

31. अनुच्छेद 14 पर आधारित चुनौती का इस न्यायालय की **मगनलाल छगनलाल**[1] में विद्यमान नजीर से उत्तर मिल जाता है। यद्यपि, जैसा कि अभी-अभी प्रकट हो जाएगा, हमने धारा 37(1) को ऐसी रीति से पढ़ा है जिससे धारा 37(1) और धारा 64(1)(एच) के बीच प्रभाव में असमानता का अन्तर कम हो जाए तथापि उच्च न्यायालय को इसमें भी कोई सार नहीं मिला। **कान्तिलाल वाले मामले**[2] को देखते हुए अनुच्छेद 19(1)(च) से भी सहायता नहीं ली जा सकती। उस मामले में इस न्यायालय द्वारा पाई गई एकमात्र त्रुटि प्रक्रिया सम्बन्धी थी। प्रस्तुत अधिनियम में इस कमी को पूरा कर दिया गया है और स्वयं उच्च न्यायालय ने इस अभिवचन को इस आधार पर नामंजूर कर दिया है कि इस पर जोर नहीं दिया गया था।

---

[1] (1975) 1 एस० सी० आर० 1=[1974] 2 उम० नि० प० 952.

[2] (1968) 1 एस० सी० आर० 735.

1977 (8) eILR(PAT) SC 16

32. श्री काजी ने दलील दी है कि अधिनियम की स्कीम के अधीन व्यवहारियों पर दोनों ओर का दुष्प्रभाव पड़ेगा और यह अनुचित है। राज्य समस्त विधिविरुद्ध (प्रायः गलती से किए गए) संग्रहों का अधिहरण कर लेता है और उन्हीं धनराशियों को क्रेता वापिस मांग सकते हैं। यह बात अन्यायपूर्ण है। यह अभिनिर्धारित किए बिना कि अनुच्छेद 19(5) का अतिक्रमण किया गया है, हमारे विचार से अधिहरण खण्ड का संकुचित निर्वचन करने से न्याय की पूर्ति हो जाएगी।

33. धारा 37(1) में यह अवश्य कहा गया है कि 'कर के रूप में किसी व्यक्ति द्वारा संगृहीत धनराशि का अधिहरण कर लिया जाएगा।' शाब्दिक रूप से पढ़ने पर समस्त धनराशि राज्य के पास चली जाती है। हम मान लेते हैं कि व्यवहारी ने समस्त संगृहीत राशियां या उनका कुछ भाग ग्राहकों को वापिस कर दिया है। क्या ऐसे प्रति-संदाय को ध्यान में रखे बिना सम्पूर्ण रकम का अधिहरण हो जाएगा। हमारे विचार से नहीं होगा।

34. धारा 37(1) में अधिहरण के सम्बन्ध में 'ऐसे व्यक्ति द्वारा ...... संगृहीत धनराशि ...... अधिहृत हो जाएगी' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है। यहां 'संगृहीत' का क्या अभिप्राय है? शब्दों के संदर्भ को देखे बिना उनका प्रभावशील अर्थान्वियन नहीं हो सकता। संदर्भ से शब्द के भावार्थ पर प्रभाव पड़ता है। उपबन्ध की भावना से इस अर्थान्वियन को बल मिलता है कि 'संगृहीत' से व्यापारी द्वारा 'संगृहीत और अपने पास रखा गया' अभिप्रेत है। यदि व्यवहारी ने केवल कर के रूप में धनराशि एकत्र की और उसे उचन्ति खाते में डाल दिया, क्योंकि कराधेयता के बारे में विवाद था, या वह इसके कराधेय न होने की दशा में इसे वापिस करने के लिए तैयार था तो यह संगृहीत नहीं थी। मुख्य न्यायाधिपति ग्रिफिथ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि आस्ट्रेलियन कस्टम्स टैरिफ ऐक्ट में 'संगृहीत' के अन्तर्गत 'इस करार के अधीन जमा की गई धनराशि सम्मिलित नहीं है कि यदि वह विधिक रूप से संदेय न हो तो उसे वापिस कर दिया जाएगा।' (वर्ड्स एण्ड फरेज़ेज पृष्ठ 274)। इसलिए हम 'संगृहीत' का यह अर्थ लगाएंगे कि इसके अन्तर्गत वे रकमें नहीं आती जो अनन्तिम रूप से इस शर्त पर एकत्र की गई हैं कि यदि उन्हें व्यवहारी से वसूल न की जाने योग्य पाया जाएगा तो वे वापिस कर दी जाएंगी।

1977(8) eILR(PAT) SC 16

35. अब हम 'अधिहरण' पद पर विचार कर लेते हैं। बात यह है कि यह अभिनिर्धारित करने के लिए नजीर है कि 'अधिहृत हो जाएगी' से कानून के संदर्भ और भाव पर निर्भर रहते हुए 'अधिहरण के दायित्वाधीन होना' अभिप्रेत है। **अटर्नी जनरल** बनाम **पार्सन्स**[1] में लार्ड पोर्टर ने स्वतः अधिहरण सुझाने वाली भाषा के सम्बन्ध में ऐसे अनुमान को नकारते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया था––

> "प्रतिकूल राय इस तथ्य के आधार पर दी गई है कि धारा 1(1) में मेरे द्वारा अपनाए गए अर्थान्वयन के आधार पर, अधिहरण से 'अधिहरण के दायित्वाधीन' अभिप्रेत है, जबकि मेरे श्रेष्ठ और विद्वान् मित्र हैनरिटॉन के लार्ड मार्टन ने अपनी राय में, जिसे पढ़ने का मुझे अवसर मिला था, यह बताया है कि उपधारा (2)(iv) में इसका अर्थ 'अधिहृत' है, न कि 'अधिहरण के दायित्वाधीन'। यह सही है, किन्तु भाषा भिन्न है। स्वीकृत रूप से 'अधिहृत' का अर्थ उस व्यक्ति की इच्छानुसार 'अधिहरण के दायित्वाधीन' हो सकता है जिसे अधिहरण का अधिकार दिया गया है और प्रत्येक मामले में स्वतः अधिहरण विवक्षित नहीं होता।"

उसी निर्णय में लॉर्ड कोहिन ने 'अधिहरण' को 'अधिहरण के दायित्वाधीन' के अर्थ में पढ़ना समुचित समझा। यद्यपि इस विषय पर मतभेद था तथापि यह कहना पर्याप्त होगा कि ऐसा अर्थान्वयन उचित है। इसके अतिरिक्त स्वयं धारा 37 में उस भावार्थ को उपदर्शित करने वाला संकेत स्पष्ट रूप से विद्यमान है जिसमें 'अधिहृत हो जाएगी' का प्रयोग किया गया है। धारा 37(2) में आयुक्त को यह निदेश दिया गया है कि वह निर्धारिती को यह हेतुक दर्शित करने के लिए सूचना जारी करे कि उस पर अधिहरण सहित या रहित शास्ति क्यों न अधिरोपित कर दी जाए। अधिहरण के विनिर्दिष्ट उल्लेख सहित ऐसी सूचना आयुक्त के अधिहरण करने या न करने या भागतः अधिहरण करने के विकल्प की ओर इंगित करती है। यह बात धारा 37(3) में स्पष्ट कर दी गई है जिसमें कहा गया है कि 'तदुपरान्त आयुक्त जांच करेगा और ऐसा आदेश देगा जैसा वह उमुचित समझे'। इस आदेश के अन्तर्गत शास्ति और

[1] (1956) ए० सी० 421.

अधिहरण आ जाते हैं । इसलिए आयुक्त को सम्पूर्ण या कम धनराशि का अधिहरण करने अथवा किसी भी धनराशि का अधिहरण न करने का विवेकाधिकार है । हम 'अधिहृत हो जाएगी' के अर्थ को 'अधिहरण के दायित्वाधीन होगी' तक सीमित करते हैं ।

36. 'अधिहरण के दायित्व' के रूप में 'अधिहरण' के इस प्रस्तुतीकरण से कानून की साम्या बनी रहती है । आयुक्त को अन्तिम आदेश पारित करने से पूर्व मामले की सभी परिस्थितियों का ध्यान रखना होगा जिसमें यह तथ्य भी सम्मिलित है कि विधि-विरुद्ध रूप से संग्रहीत रकमें उन क्रेताओं को वापिस कर दी गई हैं जिनकी वे थीं । इस विषय में हमारा यह स्पष्ट विचार है कि अधिहरण कुल संग्रहों में से क्रेताओं को वापिस की गई धनराशियों को घटाकर केवल शेष तक और उससे अनधिक तक ही प्रवृत्त होना चाहिये । हम यह भी अभिनिर्धारित कर देते हैं कि आयुक्त के लिए व्यवहारी द्वारा दिए गए इस वचन पर विचार करना उचित और युक्तियुक्त होगा कि वह क्रेताओं से संगृहीत रकमें उन्हें वापिस कर दे । उपबन्ध की मानवीयता उसकी सांविधानिकता से पृथक हो सकती है। काउन्सेल ने दलील दी है कि क्या यह अयुक्तियुक्त नहीं है कि भारी धनराशियों का अधिहरण कर लिया जाए और फिर भी व्यवहारी को अनेक कार्यवाहियों के खतरे में छोड़ दिया जाए ? क्या विभागीय दण्ड को धारा 64(1)(एच) के अधीन दाण्डिक अधिरोपण के मुकाबले अत्यधिक भारी बना देना विभेदकारी नहीं है ? वे लोग भाग्यशाली होंगे जिन पर अभियोग चलाया जाएगा क्योंकि दाण्डिक विधि नम्र है । इन सम्भावनाओं से दोषसिद्धि होने पर भी अवैध रूप से संगृहीत धनराशियों से उसी रूप में वंचित किए जाने की आवश्यकता को ही बल मिलता है जिस रूप में विभागीय शास्ति अधिरोपित किए जाने पर किया जाता है । इसके साथ व्यवहारियों को पूर्ण रूप से उन्मोचित किया जाना चाहिए और स्थूल रूप से तथा शीघ्रता से किए गए सत्यापन द्वारा क्रेताओं को निःशुल्क और तत्काल वापिसी होनी चाहिए जो मनीआर्डर द्वारा की जानी चाहिए। हम विधि को मान्य ठहराते हैं, तथापि, यदि सांविधानिकता को अलंध्य होना है तो, ऐसे सुधारात्मक उपान्तरणों का सुझाव देते हैं। सांविधानिक विधि में अन्तिम कुछ नहीं होता ।

37. कुछ भी हो हमारा यह समाधान हो गया है कि ये अनुमानित प्रश्न सांविधानिक स्थिति को अस्थिर नहीं बनाते । इसके अतिरिक्त हमारा

अर्थान्वयन उन धनराशियों का अधिहरण न करने के लिए राज्य को बाध्य करता है जो पहले ही वापिस कर दी गई हैं या जिनको वापिस करने का वचन दे दिया गया है या जिनके विषय में इसी प्रकार की कोई अन्य बात है । हमारा यह निदेश कि राज्य किसी आसान प्रक्रिया द्वारा धनराशि क्रेताओं को वापिस कर देगा, क्रेताओं द्वारा दावे किए जाने के विरुद्ध व्यवहारी की सहायता करता है ।

38. यह प्रकट आशंका सही नहीं है कि अधिहरण का वित्तीय भार उस दशा में टाला जा सकता है जब व्यवहारी पर अभियोग चलाया जाए। दाण्डिक न्यायालय केवल धारा 64(1) में विनिर्दिष्ट हद तक दण्ड दे सकता है । समुचित रूप से पढ़े जाने पर धारा 37(4) शास्ति के साथ-साथ अभियोग चलाने का निषेध करती है, किन्तु अधिहरण के साथ अभियोग चलाना अनुज्ञात करती है । धारा 37(1) और धारा 37(4) में 'शास्ति' शब्द के सीमित अर्थ में उसके अन्तर्गत अधिहरण नहीं आता जो भिन्न दाण्डिक प्रवर्ग का है । अधिहरण साधारण अर्थ में शास्ति है किन्तु धारा 37(1) और (4) के विनिर्दिष्ट अर्थ में शास्ति नहीं है। आखिरकार अधिकारी न्यायिकवत् शक्तियों का प्रयोग कर रहा होता है और अधिकतम वसूली पर जोर नहीं दे रहा होता । प्रत्येक न्यायोचित और सुसंगत विचार उसके विनिर्णय में सम्मिलित होना चाहिए जिससे स्वयं आदेश अयुक्तियुक्त होने के कारण या विवेकाधिकार का अनुचित प्रयोग होने के कारण दूषित न हो । बचन का पालन आवश्यक गारंटी द्वारा सुनिश्चित किया जाना चाहिए ताकि व्यवहारी दोहरा खेल न खेले और क्रेताओं को धोखा न हो जाए । हम कोई निश्चित बातें विहित नही कर रहें हैं अपितु उन कराधान प्राधिकारियों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत बता रहें हैं जो न्यायिकवत् शक्तियों का प्रयोग करते हैं । न्यायिकवत् शक्तियों से युक्त कर अधिकारियों की अपनी कर अधिकारियों के रूप में हैसियत को न्यायिक शक्तियों के प्रतिकूल समझने की प्रवृत्ति है । कल्याणकारी राज्य में और न्यायिक प्रक्रिया में स्वाभाविक मूल्यांकन में विभिन्न कारणों से प्रेरित ऐसा दृष्टिकोण प्रशंसनीय नहीं हो सकता । इन सिद्धांतों से विचलन की शास्ति पारित आदेश की समाप्ति है । प्रशासनिक शक्ति के प्रयोग पर दुर्भाव का प्रभाव सुस्थिर है।

39. कठोर विधिकता की दृष्टि से जब एक बार धनराशि राज्य को अधिहृत हो जाती है तो इसे क्रेता को देने की कोई बाध्यता

नहीं होती किन्तु हमारे राज्य के कल्याणकारी स्वरूप और कुछ सांविधानिक बातों के विचार से जिनकी हम खोज नहीं कर रहे हैं, ऐसी बाध्यता स्वेच्छा से अपने ऊपर ली जानी चाहिए।

40. निर्णयन विधि का काफी सर्वेक्षण कर लिया गया है जिसमें काउन्सेलों को पर्याप्त श्रम करना पड़ा है और विक्रय कर विधि की इस शाखा में सांविधानिक विधि के आधार पर न्यायिक विचार के आकाश-पाताल के अन्तर वाले मत व्यक्त किए गए हैं। हम विस्फोटक बकाया कार्य के इन व्यस्त दिनों में विशाल परियोजना लेने के प्रति सजग है तथापि क्षति के बिना सूक्ष्मकरण की सुन्दर कला महान न्यायिक संस्था के बने रहने के लिए विधिक निवेदनों में सृजनात्मक डारवीनी उद्भदन हो सकता है। इस के अतिरिक्त निर्णयों और दलीलों की दृष्टि से छोटा सुन्दर हो सकता है। किन्तु हम सर्वश्री काजी, वी० सेन, एस० टी० देसाई और एफ० एस० नरीमन (मध्यक्षेपी की ओर से) की सम्पूर्णता, विचारशीलता, दूरदर्शिता और प्रेरकता की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। विभिन्न काउन्सेलों ने अपना-अपना पृथक दृष्टिकोण एक ही उद्देश्य अर्थात् न्यायालय का मार्गदर्शन करने के लिए प्रकट किया है।

41. ऊपर दिए गए कारणों से हम अपीलें मंजूर करते हैं, किन्तु परिस्थितियों को देखते हुए खर्च के बारे में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है।

42. दलीलों की समाप्ति के समय विद्वान् काउन्सेल द्वारा यह निवेदन किया गया था कि कुछ अपीलों में ऐसे विषय उठाए गए हैं जो सांविधानिकता से सम्बन्धित नहीं हैं, अपितु तथ्यों और विधि के अर्थान्वयन पर आधारित है। ऐसी अपीलों के सम्बन्ध में पृथक निदेश जारी किए जाएंगे।

न्यायाधिपति पी० एस० कैलाशम् के मतानुसार।

न्यायाधिपति कैलाशम्—

43. सन् 1976 की सिविल अपील संख्या 1410 और 1671–85 प्रमाणपत्र लेकर की गई हैं और शेष अपीलें इस न्यायालय द्वारा दी गई विशेष इजाजत लेकर की गई है। महाराष्ट्र राज्य 1976 की सिविल अपील संख्या 1410 में मध्यक्षेपी है।

44. यद्यपि मैं न्यायाधिपति वी० आर० कृष्ण अय्यर के इस निष्कर्ष से सहमत हूं कि अपीलें मंजूर की जानी चाहिए; तथापि मैं उन

विषयों पर अपने विचार प्रगट करना चाहूंगा जो इन अपीलों में विनिश्चय के लिए उत्पन्न हुए हैं।

45. उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया मुख्य प्रश्न यह था कि क्या बांम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959 की धाराएं 37(1) (ए) और 46(2) संविधान की अनुसूची 7 की सूची 2 की प्रविष्टि 54 द्वारा प्रदत्त विधायी शक्ति से परे हैं। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आक्षेपित धाराएं विधानमण्डल की शक्ति से परे हैं और इसलिए शक्तिबाह्य हैं। इस विनिश्चय से व्यथित हो कर राज्य ने ये अपीलें की हैं।

46 धारा 37(1)(ए) और (बी) निम्नलिखित रूप में हैं—

*"37(1) यदि कोई व्यक्ति—

(ए)(i) जो इस अधिनियम के अधीन कर का संदाय करने के दायित्वाधीन व्यवहारी नहीं है कर के रूप में किसी धनराशि का संग्रह करेगा, या

(ii) जो रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी है, अपने द्वारा संदेय कर से अधिक रकम का कर के रूप में संग्रह करेगा, या

(ii–ए) जो रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी है, धारा 15-ए-I की उपधारा (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करके किसी रकम का अतिरिक्त कर के रूप में संग्रह करेगा, या

(iii) अन्यथा धारा 46 के उपबन्धों का उल्लंघन करके कर का संग्रह करेगा, या

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"37(1) If any person—

(a) (i) not being a dealer liable to pay tax under this Act, collects any sum by way of tax, or

(ii) being a registered dealer, collects any amount by way of tax in excess of the tax payable by him, or

(ii-a) being a registered dealer, collects any amount by way of additional tax in contravention of the provisions of sub-section (2) of section 15A-I, or

(iii) otherwise collects tax in contravention of the provision of section 46, or

(बी) जो इस अधिनियम के अधीन कर संदाय के दायित्वाधीन व्यवहारी है या जो ऐसा व्यवहारी है जिससे आयुक्त ने उस पर सूचना की तामील करके ऐसा करने की अपेक्षा की थी, धारा 48 की उपधारा (1) का उल्लंघन करके अपने द्वारा खरीदे गए या बेचे गए माल के मूल्य का सही लेखा रखने में असफल रहेगा या उस धारा के अधीन ऐसा किए जाने का निदेश दिए जाने पर निदेश के अनुसार लेखा या अभिलेख रखने में असफल रहेगा,

तो वह उस कर के अतिरिक्त, जिसके लिए वह दायित्वाधीन है, निम्नलिखित रूप में शास्ति की रकम का संदाय करने के दायित्वाधीन होगा—

(i) यदि खण्ड (ए) (i) या (iii) में उल्लिखित उल्लंघन किया गया है तो दो हज़ार रुपए से अनधिक की रकम की शास्ति या कर के रूप में संगृहीत धनराशि से दूगनी शास्ति, इनमें से जो भी कम हो,

(ii) यदि खण्ड (ए) (ii) या (ii–ए) या खण्ड (बी) में उल्लिखित उल्लंघन किया गया है तो दो हज़ार रुपए से अनधिक रकम की शास्ति और इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति द्वारा धारा 15–ए–I की उपधारा (2) या धारा 46 का उल्लंघन करके कर के रूप में संगृहीत धनराशि राज्य सरकार को अधिहृत

(b) being a dealer to pay tax under this Act, or being a dealer who was required to do so by the Commissioner by a notice served on him fails in contravention of sub-section (1) of section 48 to keep a true account of the value of the goods purchased or sold by him, or fails when directed so to do under that section to keep any account or record in accordance with the direction,

he shall be liable to pay in addition to any tax for which he may be liable a penalty of an amount as follows:—

(i) where there has been a contravention referred to in clause (a)(i) or (iii), a penalty of an amount not exceeding two thousand rupees or double the sum collected by way of tax, whichever is less.

(ii) wehre there has been contravention referred to in clause (a) (ii) or (ii-a) or clause (b), a penalty of an amount not exceeding two thousand rupees, and in addition, any sum collected by the person by way of tax in contravention of sub-section (2) of section 15A-I or section 46 shall be forfeited to the State Government. When any order of forfeiture

1977(8) eILR(PAT) SC 16

हो जाएगी। अधिहरण का आदेश दिए जाने पर आयुक्त, सम्बन्धित व्यक्तियों की जानकारी के लिए, ऐसे विवरण देते हुए और ऐसी रीति से जैसा विहित किया जाए, उसकी सूचना प्रकाशित करेगा या प्रकाशित करवाएगा।"

धारा 46 (1) में यह उपबंध करके कुछ दशाओं में कर के संग्रह का निषेध किया गया है कि कोई भी व्यक्ति ऐसे माल के विक्रय की बाबत कर के रूप में कोई धनराशि संगृहीत नहीं करेगा जिस पर धारा 5 के अनुसार कोई कर संदेय नहीं है। उपधारा (2) जिसे शक्ति बाह्य अभिनिर्धारित किया गया है निम्नलिखित रूप में है—

*"46(2) कोई भी व्यक्ति जो, रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी नहीं है, और किसी विक्रय या क्रय की बाबत कर का संदाय करने के दायित्वाधीन नहीं है, किसी माल के विक्रय पर किसी भी अन्य व्यक्ति से कर के रूप में कोई धनराशि संगृहीत नहीं करेगा और कोई भी रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन अपने द्वारा संदत्त कर की रकम से अधिक रकम कर के रूप में संगृहीत नहीं करेगा :

परन्तु यह उपधारा ऐसे मामले में लागू नहीं होगी जिसमें किसी व्यक्ति से तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबन्धों के अधीन उस पर अधिरोपित शर्तों और निर्बन्धनों का अनुपालन करने के लिए पृथक् रूप से कर की ऐसी रकम का संग्रह किए जाने की अपेक्षा है।"

---

is made, the Commissioner shall publish or cause to be published a notice thereof for the information of the persons concerned giving such details and in such manner as may be prescribed."

*"46(2) No person, who is not a registered dealer and liable to pay tax in respect of any sale or purchase, shall collect on the sale of any goods any sum by way of tax from any other person and no registered dealer shall collect any amount by way of tax in excess of the amount of tax payable by him under the provisions of this Act :

Provided that this sub-section shall not apply where a person is required to collect such amount of the tax separately in order to comply with the conditions and restrictions imposed on him under the provisions of any law for the time being in force."

सूची 2 की प्रविष्टि 54, जिसका आक्षेपित धाराओं का अधिनियमन करने की शक्ति प्रदान करने वाली के रूप में राज्य द्वारा अवलम्ब लिया गया है, निम्नलिखित रूप में है :—

> "54. सूची 1 की प्रविष्टि 92क के उपबन्धों के अधीन रहते हुए समाचारपत्रों से भिन्न वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर।"

47. विधायी शक्ति प्रदान करने वाले शब्दों के अर्थान्वयन का सिद्धांत यह है कि शब्दों का सर्वाधिक उदार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए जिससे वे अपने विस्तृततम रूप में प्रभावित हो सकें। सूची की किसी भी मद को संकुचित निर्बन्धित अर्थ में नहीं पढ़ा जाना है। प्रत्येक साधारण शब्द के विषय में यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि उसका विस्तार उन सभी आनुषंगिक या गौण विषयों पर है जो उचित और युक्तियुक्त रूप से उसके अन्तर्गत आ सकते हैं। सम्बन्धित कर के उद्ग्रहण और संग्रह के लिए तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि कर का अपवंचन न हो, सभी आवश्यक शक्तियां प्रविष्टि के विधायी क्षेत्र के अन्तर्गत आनुषंगिक या प्रासंगिक रूप में आ जाती हैं।

48. यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, राज्य विधानमण्डल इस आशय का उपबन्ध नहीं कर सकता कि कर के रूप में संगृहीत ऐसी धनराशि जो अधिनियम के अधीन कर के रूप में शोध्य नहीं है, सरकार को दे दी जाएगी। विधानमण्डल क्रेताओं से कर के रूप में अनुचित रूप से रकम के संग्रह के लिए शास्ति का उपबन्ध कर सकता है जो कराधान विधान के उद्देश्यों के कार्यान्वयन के प्रयोजन के लिए होगी।

49. आक्षेपित धारा 37(1)(ए) कुछ उपबन्धों के उल्लंघन के लिए शास्ति अधिरोपित करती है। इसमें उपबन्ध किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति जो इस अधिनियम के अधीन कर-संदाय के दायित्वाधीन व्यवहारी नहीं है, कर के रूप में किसी धनराशि का संग्रह करेगा या जो रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी है, अपने द्वारा संदेय कर से अधिक रकम का कर के रूप में संग्रह करेगा, या जो रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी है, धारा 15–ए-I की उपधारा (2) के उपबन्ध का उल्लंघन करके अतिरिक्त कर के रूप में किसी रकम का संग्रह करेगा, या अन्यथा धारा 46 के उपबन्धों का उल्लंघन

करके कर का संग्रह करेगा, तो वह उस कर के अतिरिक्त जिसके लिए वह दायित्वाधीन है, शास्ति के दायित्वाधीन होगा। अधिरोपित शास्ति यह है: (1) दो हजार रुपए से अनधिक की रकम की शास्ति या कर के रूप में संगृहीत धनराशि से दुगनी शास्ति, इनमें से जो भी कम हो, (2) कुछ अन्य मामलों में दो हजार रुपए से अनधिक रकम की शास्ति और इसके अतिरिक्त उस व्यक्ति द्वारा धारा 15–ए-I की उपधारा (2) या धारा 46 का उल्लंघन करके कर के रूप में संगृहीत धनराशि राज्य सरकार को अधिहृत हो जाएगी । शेष धारा में शास्ति या अधिहरण का उद्ग्रहण करने की प्रक्रिया विहित की गई है। इस प्रकार यह उपबन्ध किया गया है कि उल्लंघन से कर के रूप में संगृहीत धनराशि राज्य सरकार को अधिहृत होने के अतिरिक्त दो हजार रुपए से अनधिक की रकम की शास्ति का उद्ग्रहण उपगत होगा । यदि अधिनियमन के प्रवर्तन के प्रयोजन से अधिहरण का उद्ग्रहण किया जाता है तो वह विधिमान्य होगा, किन्तु यदि अधिहरण का प्रयोजन उस रकम का संग्रह करना है जिसे निर्धारिती ने अनुचित रूप से संगृहीत किया है, तो 'अधिहरण' शब्द का प्रयोग उस धनराशि को प्राप्त करने की केवल युक्ति होगी जिसे अधिनियम के उपबन्धों के उल्लंघन में संगृहीत किया गया था और यह राज्य विधानमण्डल की शक्ति से परे होगा, क्योंकि राज्य का आशय उस धनराशि को प्राप्त करना होगा जो ऐसे निर्धारिती द्वारा संगृहीत की गई है जिससे कर वसूल नहीं किया जाना है।

50. राज्य की दलील यह है कि सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन अधिनियम के समुचित प्रवर्तन के प्रयोजन से शास्ति, जिसमें निर्धारिती द्वारा अप्राधिकृत रूप से संगृहीत धनराशि का अधिहरण सम्मिलित है, अधिरोपित करना राज्य विधानमण्डल की सक्षमता में है, जबकि निर्धारिती की ओर से यह दलील दी गई है कि उस रकम का अधिहरण निर्धारितियों द्वारा अप्राधिकृत रूप से संगृहीत रकम को, इस प्रकार संगृहीत रकम कर के रूप में वसूली योग्य न होने पर भी, राज्य द्वारा प्राप्त करने की युक्ति है ।

51. अब इस विषय पर इस न्यायालय के विनिश्चयों को देख लेते हैं। सबसे पहला मामला **ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड** बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य**[1] वाला मामला है । उस मामले में व्यवहारियों

---

1 (1962) 1 एस० सी० आर० 549.

का निर्धारण विक्रय पर, जिसमें उड़ीसा राज्य से बाहर का विक्रय सम्मिलित था, किया गया था और उन्होंने उस पर कर का संदाय किया था। किन्तु **मुम्बई राज्य** बनाम **यूनाईटेड मोटर्स (इण्डिया) लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के पश्चात् उन्होंने अधिनियम की धारा 14 के अधीन संदत्त कर के प्रतिदाय के लिए इस आधार पर आवेदन किया कि राज्य से बाहर के विक्रय पर संविधान के अनुच्छेद 236 के खण्ड (1)(क), सपठित व्याख्या, के अधीन कराधेय नहीं थे। विक्रय कर प्राधिकारियों ने प्रतिदाय करने से इन्कार कर दिया और निर्धारितियों ने उच्च न्यायालय में समावेदन किया। उच्च न्यायालय ने कुछ अवधियों के लिए संदत्त कर के प्रतिदाय का आदेश दे दिया। उड़ीसा सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1958 में भूतलक्षी प्रभाव से संशोधन करके उसमें धारा 14-ए जोड़ दी गई जिसमें यह उपबन्ध किया गया कि प्रतिदाय का दावा केवल उसी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है जिससे व्यवहारी ने विक्री कर के रूप में या अन्यथा रकम वसूल की थी। इस संशोधन का प्रभाव यह था कि व्यवहारी राज्य के बाहर विक्रयों पर संदत्त कर के प्रतिदाय का दावा नहीं कर सकते थे अपितु केवल वही व्यक्ति ऐसा कर सकते थे जिनसे व्यवहारियों ने रकम वसूल की थी।

52 उड़ीसा सेल्स टैक्स (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट, 1958 की धारा 14-ए में निम्नलिखित उपबन्ध है—

> *"इस अधिनियम में किसी भी बात के होते हुए, जहां कोई रकम किसी व्यक्ति द्वारा धारा 9-बी की उपधारा (3) के अधीन जमा की जाती है या व्यवहारी द्वारा कर के रूप में संदत्त की जाती है और जहां ऐसी रकम या उसका कोई भाग ऐसे व्यक्ति या व्यवहारी द्वारा संदेय नहीं है, वहां ऐसी रकम या उसके किसी भाग के प्रतिदाय का दावा केवल उसी व्यक्ति द्वारा किया

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Notwithstanding anything contained in this Act where any amount is either deposited by any person under sub-section (3) of section 9-B or paid as tax by a dealer and where such amount or any part thereof is not payable by such person or dealer, a refund of such amount or any part thereof can be claimed only by the person from whom

[1] (1953) एस० सी० आर० 1069.

1977(8) eILR(PAT) SC 16

जा सकता है जिससे ऐसे व्यक्ति या व्यवहारी ने वास्तव में ऐसी रकम, विक्रय कर के रूप में या अन्यथा, वसूल की थी और धारा 14 के परन्तुक में उपबन्धित परिसीमाकाल उपयुक्त दावों को लागू होगा।"

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विधानमण्डल अनुचित रूप से संगृहीत विक्रय कर के प्रतिदाय के लिए मंजूरी देने के विषय में विधि बनाने के लिए सक्षम था। यह घोषित करने की शक्ति को अपवर्जित करने का कोई कारण नहीं है कि प्रतिदाय का दावा केवल उसी व्यक्ति द्वारा किया जा सकेगा जिससे व्यवहारी ने विक्रय कर के रूप में या अन्यथा रकम वसूल की है। सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन राज्य की शक्ति पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि "इसलिए उड़ीसा राज्य विधानमण्डल अनुचित रूप से या विधि विरुद्ध रूप से संगृहीत कर के प्रतिदाय को मंजूर करने के गौण या आनुषंगिक विषय की बाबत शक्ति का प्रयोग करने के लिए सक्षम था और इस निमित्त विधानमण्डल की सक्षमता का निर्धारितियों के काउन्सेल ने विरोध नहीं किया है।" यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि यदि विधानमण्डल अनुचित रूप से संगृहीत विक्रय कर के प्रतिदाय को मंजूर करने के लिए विधि बनाने के लिए सक्षम था तो यह घोषित करने की शक्ति को अपवर्जित करने का कोई कारण नहीं है कि प्रतिदाय का दावा केवल उसी व्यक्ति द्वारा किया जा सकेगा जिससे व्यवहारी ने विक्रय कर के रूप में या अन्यथा रकमें वसूल की थीं। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया था कि राज्य विधानमण्डल अप्राधिकृत रूप से संगृहीत कर के प्रतिदाय को मंजूर करने के लिए और यह घोषित करने के लिए सक्षम है कि प्रतिदाय का दावा केवल उसी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है जिससे व्यवहारी ने रकम वसूल की थी। वास्तव में अनुचित रूप से संगृहीत विक्रय कर के प्रतिदाय को मंजूर करने के लिए विधि बनाने की सक्षमता को प्रश्नगत नहीं किया गया था। उस विनिश्चय में इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया था कि सरकार द्वारा निर्धारिती को यह निदेश दिया जाना विधायी सक्षमता में हैं या नहीं कि वह रकम का संदाय सरकार को कर दे।

---

such person or dealer has actually realised such amounts whether by way of sales-tax or otherwise and the period of limitation provided in the proviso to S.14 shall apply to the aforesaid claims."

53. यह प्रश्न **आर० अब्दुल कादिर एण्ड कम्पनी** बनाम **विक्रय कर अधिकारी, हैदराबाद वाले मामले**[1] में विनिश्चय के लिए उत्पन्न हुआ था। निर्धारिती ने पान के पत्तों के क्रेताओं से अपने द्वारा किए गए विक्रयों के सम्बन्ध में विक्रय कर का संग्रह किया था। किन्तु उसने संगृहीत रकम का संदाय सरकार को नहीं किया। सरकार ने निर्धारिती को निदेश दिया कि वह उस रकम का संदाय सरकार को कर दे और इस पर उसने हैदराबाद जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1950 की धारा 11(2) की विधिमान्यता को प्रश्नगत करते हुए उच्च न्यायालय में रिट पिटीशन फाइल किया। उच्च न्यायालय के समक्ष निर्धारिती की दलील यह थी कि अधिनियम की धारा 11(1), जिसमें सरकार को विधि के प्राधिकार के विना संगृहीत कर की वसूली के लिए प्राधिकृत किया गया था, राज्य विधानमण्डल की सक्षमता से परे थी, क्योंकि विधि के प्राधिकार के बिना संगृहीत कर विधि के अधीन उद्ग्रहीत कर नहीं है और इसलिए राज्य को संविधान की अनुसूची 7 की सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन अधिनियमित विधि के प्राधिकार के अधीन ऐसी रकम का संग्रह करने की छूट नहीं है। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 11(2) विक्रय या क्रय पर कर के संग्रह के सम्बन्ध में आनुषंगिक उपवन्ध के रूप में उचित थी, जबकि इस न्यायालय ने उस विनिश्चय को उलट दिया और अभिनिर्धारित किया कि यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य विधानमण्डल उस समय सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन विक्रय या क्रय पर कर अधिरोपित करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से विधि बना रहा था जब उसने धारा 11(2) के उपबन्ध बनाए क्योंकि प्रकटतः उपबन्धों के अनुसार वह रकम कर के रूप में संगृहीत होने पर भी विधि के अधीन कर के रूप में वसूली योग्य नहीं थी। अधिनियम की धारा 11(2) में निम्नलिखित उपवन्ध है --

*"किसी अधिकारी या अधिकरण के किसी आदेश में या किसी न्यायालय के निर्णय, डिक्री या आदेश में किसी बात के

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

"Notwithstanding to the contrary contained in a order of an officer or tribunal or judgment, decree or order

[1] (1964) 6 एस० सी० आर० 867.

होते हुए भी, वह व्यक्ति जिसने इस अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार किए जाने के अतिरिक्त कर के रूप में किसी रकम का 1 मई, 1950 को या उससे पूर्व संग्रह किया है, या जो ऐसा संग्रह करता है अपने द्वारा इस प्रकार संगृहीत रकम ऐसे समय के भीतर और ऐसी रीति से जैसा विहित किया जाए, राज्य सरकार को संदत्त कर देगा और ऐसे संदाय में व्यतिक्रम करने पर उक्त रकम उससे इस प्रकार वसूल की जाएगी मानो वह भूराजस्व की बकाया हो।"

धारा 11(2) के अधीन वह व्यक्ति, जिसने अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार किए जाने के अतिरिक्त कर के रूप में किसी रकम का संग्रह किया है, विहित रीति से उसका संदाय सरकार को कर देगा। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि कर के रूप में संगृहीत धनराशियां वास्तव में अधिनियम के अधीन वसूली योग्य कर नहीं हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य, विधानमण्डल सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अधीन विक्रय या क्रय पर कर अधिरोपित करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से विधि बना रहा था। चूंकि संगृहीत धनराशियां, कर के रूप में संगृहीत होने पर भी, अधिनियम के अधीन वसूली योग्य कर नहीं थीं अतः इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि संगृहीत रकम कर के रूप में वसूली नहीं की जा सकती। स्थिति को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया गया है—

"हमारे विचार से आनुषंगिक या प्रासंगिक शक्ति के विषयक्षेत्र का विस्तार विधानमण्डल को यह उपबन्ध करने के लिए अनुज्ञात करने तक नहीं है कि कर के रूप में संगृहीत रकम, चाहे अनुचित रूप से संगृहीत ही क्यों न हो, सुसंगत कराधान प्रविष्टि के अधीन बनाई गई विधि के अधीन वसूली योग्य न होने पर भी उसका संदाय सरकार को इस प्रकार किया जाएगा मानो वह कर हो।"

---

of a Court every person who collected or collects on or before 1st May, 1950, any amount by way of tax otherwise than in accordance with the provisions of this Act shall pay over to the Government within such time and in such manner as may be prescribed the amount so collected by him, and in default of such payment the said amount shall be recovered from him as if it were arrears of land revenue."

ओरियण्ट पेपर मिल्स लिमिटेड बनाम **उड़ीसा राज्य और अन्य**[1] का उल्लेख करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वह विनिश्चय उनके समक्ष वाले मामले के तथ्यों को इस आधार पर लागू नहीं होता था कि वह मामला प्रतिदाय के विषय में था और न्यायालय ने मत व्यक्त किया कि "इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता कि संगृहीत कर का प्रतिदाय सदैव कर के उद्ग्रहण और संग्रह से सम्बन्धित आनुषंगिक और प्रासंगिक शक्तियों के अन्तर्गत आने वाला विषय होता है। "

54. धारा 11(2) के उपबन्ध को इस आधार पर न्यायोचित ठहराने का प्रयास स्वीकार नहीं किया गया था कि यह शास्ति के रूप में था क्योंकि न्यायालय की राय के अनुसार धारा 11(2) को कर का उद्ग्रहण करने के लिए उपबन्ध के रूप में या कर के संग्रह से सम्बन्धित आनुषंगिक या प्रासंगिक उपबन्ध के रूप में न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। किन्तु न्यायालय ने आगे कहा कि उपबन्ध में क्रेताओं से कर के रूप में अनुचित रूप से रकम के संग्रह के लिए शास्ति का उपबन्ध नहीं था, जो कराधान विधि के उद्देश्यों की पूर्ति के प्रयोजन से शास्ति के रूप में न्यायोचित हो सकता था। इसलिए यह विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए ही नजीर नहीं है कि यदि संगृहित रकम कर के रूप में शोध्य नहीं है तो राज्य विधि द्वारा उसे इसलिए वसूली योग्य नहीं बना सकता कि उसका व्यवहारी ने अनुचित रूप से संग्रह किया है, अपितु इसमें यह भी घोषित किया गया है कि राज्य सरकार अनुचित रूप में रकम के संग्रह के लिए शास्ति का उपबन्ध कर सकती है, क्योंकि ऐसा उद्ग्रहण कराधान विधि के उद्धेश्यों की पूर्ति के प्रयोजन से शास्ति के रूप में न्यायोचित होता। यदि बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959 की धारा 37 (1) (ए) के अधीन उद्ग्रहण, जिससे हमारा सम्बन्ध है, कराधान विधि के समुचित प्रवर्तन के लिए शास्ति है तो यह विधिमान्य होगा, जब कि यदि यह अप्राधिकृत रूप से संगृहीत रकम के, उद्ग्रहण शास्ति के रूप में न होने पर, संग्रह की युक्ति है तो यह सक्षम नहीं होगी।

55. अगला महत्वपूर्ण विनिश्चय जिसका निर्धारिती की ओर से अवलम्ब लिया गया है, **अशोक मार्केटिंग लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[2] वाला मामला है। विक्रय कर प्राधिकारियों ने निर्धारिती

---

[1] (1966) 1 एस० सी० आर० 549.

[2] (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930.

के सीमेंट के विक्रय में रेल माल भाड़े की रकम को सम्मिलित कर लिया था। अपीली प्राधिकारी ने रेल माल भाड़े को विक्रय में सम्मिलित करने का निदेश देने वाले आदेश को अपास्त कर दिया। संदाय किए गए फालतू कर का प्रतिदाय नहीं किया अपितु बिहार सेल्स टैक्स ऐक्ट में संशोधन करके धारा 20-ए (3) पुरःस्थापित कर दी गई जिसमें निर्धारिती को यह हेतुक दर्शित करने के लिए कहा गया कि रेल माल भाड़े पर विक्रय कर को प्रकट करने वाली रकम का जो निर्धारण आदेश के अधीन प्रतिदेय हो गई थी अधिहरण क्यों न कर लिया जाए। धारा 20-ए के उपबन्धों को चुनौती दी गई थी। वे उपबन्ध निम्नलिखित रूप में हैं—

*"(1) कोई भी व्यक्ति, जो रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी नहीं है, किसी व्यक्ति से माल के विक्रय पर कर के मद्धे या ऐसे कर के रूप में आशयित किसी रकम का, चाहे उसे किसी भी नाम या वर्णन से क्यों न पुकारा जाए, संग्रह नहीं करेगा।

(2) कोई भी रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी किसी व्यक्ति से ऐसी रकम का, उस दशा के सिवाय जिसमें और उस हद तक के सिवाय जिस हद तक वह व्यवहारी इस अधिनियम के अधीन कर के संदाय के दायित्वाधीन है, संग्रह नहीं करेगा।

(3) (ए) किसी विधि या संविदा या किसी अधिकरण, न्यायालय या प्राधिकरण के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, यदि विहित प्राधिकारी के पास

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है —

*"(1) No person who is not a registered dealer shall collect from any person any amount, by whatever name or description it may be called, towards or purporting to be tax on sale of goods.

(2) No registered dealer shall collect from any person any such amount except in a case in which and to the extent to which such dealer is liable to pay tax under this Act.

(3) (a) Notwithstanding anything to the contrary contained in any law or contract or any judgment, decree or order of any Tribunal, Court or authority, if the prescribed authority has reason to believe that any dealer has or

यह विश्वास करने का कारण है कि किसी व्यवहारी ने किसी समय इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व या उसके पश्चात्, ऐसी रकम का संग्रह किया है या किया था, तो ऐसे मामले में जिसमें या उस हद तक जिस तक उक्त व्यवहारी ऐसी रकम का संदाय करने के दायित्वाधीन नहीं था या नहीं है, वह ऐसे व्यवहारी को विहित रीति से सूचना देगा जिसमें उससे, सूचना में विनिर्दिष्ट तारीखों को और समय और स्थान पर, व्यक्तिगत रूप से या प्राधिकृत प्रतिनिधि के माध्यम से यह हेतुक दर्शित करने के लिए उपस्थित होने की अपेक्षा की जाएगी कि उसे अपने द्वारा इस प्रकार संगृहीत रकम सरकारी खजाने में जमा क्यों नहीं करनी चाहिए'।

(बी) * * * *

(4) जहां व्यवहारी द्वारा इस प्रकार संगृहीत और उसके द्वारा सरकारी खजाने में जमा की गई रकम का किसी अधिकरण, न्यायालय या प्राधिकरण के निर्णय, डिक्री या आदेश के अनुसरण में या उसके परिणामस्वरूप व्यवहारी को पहले ही प्रतिदाय कर दिया गया है, किन्तु व्यवहारी ने रकम का उस व्यक्ति को प्रतिदाय नहीं किया है जिससे उसने इसका संग्रह किया था, वहां विहित प्राधिकारी व्यवहारी को किए गए ऐसे प्रतिदाय के

---

had, at any time, whether before or after the commencement of this Act, collected any such amount in a case in which or to an extent to which the said dealer was or is not liable to pay such amount, it shall serve on such dealer a notice in the prescribed manner requiring him on a date and at a time and place to be specified therin either to attend in person or through authorised representative to show cause why he should not deposit into the Government treasury the amount so collected by him.

(b) * * *

(4) Where any amount so collected by the dealer and deposited by him into the Government treasury has already been refunded to the dealer in pursuance of or as a result of an, judgment, decree, or order of any Tribunal, court or authority, but the dealer has not refunded the amount to the person from whom he had collected it, the prescribed authority shall, notwithstanding such refund to the dealer

होते हुए भी, ऐसी रकम को जमा कराने के लिए उपधारा (3) के उपबन्धों के अनुसार कार्यवाही करने के लिए अग्रसर होगा।

(5) जहां ऐसी रकम का व्यवहारी को इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व प्रतिदाय नहीं किया गया है, किन्तु न्यायालय अधिकरण या प्राधिकरण ने प्रतिदाय का निदेश दे दिया है, वहां वह रकम, ऐसे निदेश के होते हुए भी उपधारा (3) के अधीन आदेश के अनुसरण में जमा की गई समझी जाएगी।

(6) * * * *

(7) किसी विधि या संविदा में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी जब किसी व्यवहारी ने उपधारा (3) या उपधारा (4) के अधीन आदेश के अनुपालन में कोई रकम जमा की है या उपधारा (5) के अधीन इस प्रकार जमा की गई समझी गई है तब ऐसी जमा उस रकम की बावत व्यवहारी के उस व्यक्ति के प्रति दायित्व का पूर्ण उन्मोचन समझी जाएगी जिससे इसका संग्रह किया गया था।

(8) वह व्यक्ति जिससे व्यवहारी ने उपधारा (3) या उपधारा (4) के अधीन आदेश के अनुसरण में जमा की गई

---

proceed to take action in accordance with the provisions of sub-section (3) for securing deposit of such amount.

(5) Where any such amount has not been refunded to the dealer before the commencement of this Act but a refund has been directed by a Court, Tribunal or authority, the amount shall, notwithstanding such direction, be deemed to be a deposit in pursuance of an order under sub-section (3).

(6) * * * *

(7) Notwithstanding anything to the contrary in any law or contract, when any amount is deposited by a dealer in compliance with an order under sub-section (3) or sub-section (4) or is deemed, under sub-section (5), to have been so deposited, such deposit shall constitute a good and complete discharge of the liability of the dealer in respect of such amount to the person from whom it was collected.

(8) The person from whom the dealer has collected the amount deposited in pursuance of an order under sub-section (3) or sub-section (4) or deemed, under sub-section

या उपधारा (5) के अधीन इस प्रकार जमा की गई समझी गई रकम का संग्रह किया है ऐसी रकम का विहित रीति से अपने को प्रतिदाय करने के लिए विहित प्राधिकारी को आवेदन करने का हकदार होगा और उक्त प्राधिकारी, अपना यह समाधान हो जाने पर कि दावा उचित है, प्रतिदाय अनुज्ञात कर देगा :

परन्तु ऐसा कोई प्रतिदाय केवल तभी अनुज्ञात किया जाएगा जब कि आवेदन उस अवधि की समाप्ति से पूर्व किया गया है जिसके भीतर आवेदक सिविल वाद द्वारा व्यवहारी से उस दशा में रकम का दावा कर सकता था जिसमें कि उसका दायित्व उपधारा (7) के उपबन्धों के अनुसार उन्मोचित नहीं हुआ होता :

परन्तु यह और कि ऐसे प्रतिदाय के लिए किसी दावे को आवेदक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिए बिना नामंजूर नहीं किया जाएगा ।"

इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 20-ए की उपधारा (3), (4) और (5) राज्य विधानमण्डल की शक्ति से बाह्य हैं और फलस्वरूप उपधारा (6) और (7) भी अविधिमान्य समझनी होंगी । बिहार राज्य की ओर से यह दलील दी गई थी कि वह विधि कर के रूप में रकम के उद्ग्रहण और संग्रहण के लिए नहीं है जिसका उद्ग्रहण और संग्रणय करने के लिए राज्य सक्षम नहीं है अपितु रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी को राज्य की ओर से कर के

---

(5), to have been so deposited shall be entitled to apply to the prescribed authority in the prescribed manner for refund of the amount to him and the said authority shall allow the refund if it is satisfied that the claim is in order:

Provided that no such refund shall be allowed unless the application is made before the expiry of the period within which the applicant could have claimed the amount from the dealer by a civil suit had his liability not been discharged in accordance with the provisions of sub-section (7):

Provided further that no claim for such refund shall be rejected without giving the applicant a reasonable opportunity of being heard."

रूप में संगृहीत रकम का संदाय करने के लिए विवश करने के लिए है ताकि यह उस व्यक्ति को उपलभ्य की जा सके जिससे यह विधिविरुद्ध रूप से वसूल की गई थी। **अब्दुल कादिर वाले मामले**[1] को इस आधार पर प्रभेदित करते हुए कि उद्ग्रहण करके रूप में रकम के संग्रहण के लिए नहीं है, जिसका उद्ग्रहण या संग्रहण करने के लिए राज्य सक्षम नहीं है, उसने **ओरियण्ट पेपर मिल्स वाले मामले**[2] का प्रबल अवलम्ब लिया। न्यायाधिपति शाह ने न्यायालय की ओर से निर्णय देते हुए अभिनिर्धारित किया कि **ओरियण्ट पेपर मिल्स वाला मामला**[2] इस प्रश्न पर कोई प्रभाव नहीं डालता था कि क्या राज्य बिहार सेल्स टैक्स ऐक्ट की धारा 21 को अधिनियमित करने के लिए सक्षम था, क्योंकि वह मामला इस अभिवचन का समर्थन नहीं करता कि राज्य विधानमण्डल रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी द्वारा वसूल की गई रकमों के, जो राज्य सरकार को विक्रय कर के रूप में शोध्य नहीं है, संदाय की मांग करने या उन्हें अपने पास रखने के लिए विधि बनाने के लिए सक्षम नही था। **ओरियण्ट पेपर मिल्स वाले मामले**[2] में उड़ीसा राज्य के बाहर के विक्रय पर कर का संग्रह किया गया था और जब **मुम्बई राज्य** बनाम **यूनाइटेड मोटर्स (इण्डिया) लिमिटेड**[3] वाले मामले में किए गए विनिश्चय के परिणामस्वरूप, जिसमें अभिनिर्धारित किया गया था कि सम्बन्धित राज्य के बाहर विक्रय कराधेय नहीं थे, निर्धारितियों ने प्रतिदाय की मांग की तब विधानमण्डल ने यह उपबन्ध करते हुए मध्यक्षेप किया कि प्रतिदाय का दावा केवल उस व्यक्ति द्वारा किया जा सकता था जिससे व्यवहारी ने विक्रय कर के रूप में रकम वसूल की थी। **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[4] में रेल माल भाड़े की रकम पर कर का संग्रह किया गया था और जब ऐसे उद्ग्रहण को अपास्त कर दिया गया तब विधानमण्डल ने रेल माल भाड़े पर संग्रहीत विक्रय कर को जमा मानते हुए मध्यक्षेप किया। **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[4] में बिहार सेल्स टैक्स ऐक्ट की धारा 20-ए (7) में यह उपबन्ध था कि निर्धारिती द्वारा जमा ऐसी रकम की बाबत व्यवहारी के उस व्यक्ति के प्रति दायित्व का उचित और पूर्ण उन्मोचन होगी जिससे ऐसी रकम का संग्रह

---

1 (1964) 6 एस० सी० आर० 867.

2 (1962) 1 एस० सी० आर० 549.

3 (1953) एस० सी० आर० 1069.

4 (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930

किया गया था। उपधारा (3) में उपबन्ध था कि वह व्यक्ति जिससे व्यवहारी ने रकम वसूल की थी अपने को रकम का प्रतिदाय करने के लिए आवेदन का हकदार होगा। **अशोक मार्केटिंग वाले ममाले** में संशोधन द्वारा रेल माल भाड़े पर कर की रकम को जो राजस्व द्वारा संग्रहीत की गई थी, उस रकम को जमा मानकर, रखे रखने का और जमा को वापिस कर दिए जाने की दशा में उसे वसूल करने का प्रयास किया गया था। यद्यपि हेतुदर्शित करने की सूचना में व्यवहारी से यह कहा गया था कि जमा रकम का अधिहरण क्यों न कर लिया जाए, तथापि उस धारा के उपबन्ध इस आधार पर अग्रसर हुए थे कि रकम को जमा मान लिया जाएगा। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसे व्यवहारी को विवश करने वाला उपबन्ध जिसने जानबूझकर या गलती से क्रेता से यह व्यपदेशन करके रकम का संग्रह किया था कि वह अपने द्वारा राज्य को किए जाने वाले कर के संदाय की क्षतिपूर्ति के लिए उसकी वसूली करने का हकदार है, सूची 2 की प्रविष्टि 54 का आनुषंगिक नहीं समझा जा सकता। व्यवहारी द्वारा संग्रहीत धनराशि, जिसका संग्रह करने का वह हकदार नहीं था, राज्य के पास जमा करने के लिए मांग के रूप में दावे पर आवरण डालकर संविधान के उपबन्धों को विफल करने वाली युक्ति को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता।

56. अधिहरण की शक्ति के विषय में एक मामला **कान्तिलाल बाबूलाल** बनाम **एच० सी० पटेल**[2] वाला है। चूंकि रजिस्ट्रीकृत व्यवहारियों द्वारा मुम्बई राज्य के बाहर किए गए विक्रयों पर कर वसूल नहीं किया जा सकता था, अतः निर्धारितियों को निदेश दिया गया था कि वे अपने क्रेताओं से इन विक्रयों की बाबत कर के रूप में संगृहीत रकमों का प्रतिदाय कर दें, जिसके न किए जाने पर यह निदेश दिया गया था कि रकमों का बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1946 की धारा 12-ए (4) के अधीन अधिहरण कर लिया जाएगा। निर्धारितियों ने धारा 12-ए (4) के अधीन कार्यवाही करने से प्राधिकारियों को रोकने के लिए उच्च न्यायालय में पिटीशन फाइल किया। उच्च न्यायालय ने पिटीशन खारिज कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट की धारा 12-ए (4) संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) का अतिक्रमण

[1] (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930

[2] (1968) 1 एस० सी० आर० 735.

1977(8) eILR(PAT) SC 16

करने के कारण शून्य थी। धारा 12-ए (4), जो सुसंगत उपबन्ध है, निम्नलिखित रूप में है—

*"(4) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) या (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करके किसी रकम का संग्रह करेगा या यदि कोई रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी इस अधिनियम के अधीन अपने द्वारा संदेय रकम से अधिक रकम कर के रूप में संगृहीत करेगा तो इस प्रकार संगृहीत रकमें, इस अधिनियम के अधीन अपराध के लिए ऐसे व्यक्ति या व्यवहारी के विरुद्ध संस्थित किए जा सकने वाले अभियोजन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, राज्य सरकार को अधिहृत हो जाएंगी और, यथास्थिति, ऐसा व्यक्ति या व्यवहारी विहित अवधि के भीतर, ऐसी रकम का सरकारी खजाने में संदाय कर देगा और ऐसा संदाय करने में व्यतिक्रम किए जाने पर, रकम को भू-राजस्व की बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा।"

उपधारा (4) में वह रकम राज्य सरकार को अधिहृत हो जाने का उपबन्ध है जो व्यवहारी द्वारा अधिनियम के अधीन उसके द्वारा संदेय रकम से अधिक कर के रूप में संगृहीत की गई है। राजस्व द्वारा यह दलील दी गई थी कि धारा 12-ए (4) दाण्डिक उपबन्ध है, क्योंकि इसमें उन व्यक्तियों पर शक्ति अधिरोपित करने का उपबन्ध है जो धारा 12-ए (1) और (2) का उल्लंघन करेंगे और ऐसी शक्ति विक्रय पर कर लगाने की शक्ति की आनुषंगिक है और इसलिए विधिमान्य है।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है —

*"(4) if any person collects any amount by way of tax in contravention of the provisions of sub-section (1) or (2) or if any registered dealer collects any amount by way of tax in excess of the amount payable by him under this Act, the amount so collected shall, without prejudice to any prosecution that may be instituted against such person or dealer for an offence under this Act be forfeited to the State Government and such person or dealer, as the case may be, shall within the prescribed period, pay such amount into a Government treasury and in default of such payment the amount shall be recovered as an arrear of land revenue."

राम गोपाल बनाम **विक्रय कर अधिकारी, सूरत और एक अन्य**[1] में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय का अवलम्ब लिया गया था। गुजरात उच्च न्यायालय ने धारा 12-ए (4) की विधिमान्यता को मान्य ठहराया था। **कान्तिलाल बाबूलाल वाले मामले**[2] में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया––

> "हम इस प्रश्न पर विचार नहीं करेंगे कि क्या आक्षेपित उपबन्ध की भाषा से यह अभिनिर्धारित करना सम्भव है कि यह दाण्डिक उपबन्ध है। अपने प्रस्तुत प्रयोजन के लिए हम इस स्थिति को मान लेते हैं। हम यह भी मान लेते हैं कि विधान-मण्डल को वह उपबन्ध अधिनियमित करने की सक्षमता थी। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह अनुच्छेद 19 (1) (च) का, जिसमें सम्पत्ति रखने की स्वतंत्रता की गारंटी दी गई है, अतिक्रमण करता है।"

यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अधिनियम इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए मशीनरी और अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया के बारे में मौन है कि क्या धारा 12-ए (1) और (2) का उल्लंघन किया गया है और यदि किया गया है तो किस हद तक किया गया है। चूंकि धारा में विवादग्रस्त प्रश्न के बारे में जांच का उपबन्ध नहीं है, अतः धारा 12-ए (4) के अधीन अधिहरण प्रथमदृष्टया अनुच्छेद 19 (1) (च) का उल्लंघन करता है। विनिश्चय इस धारणा के आधार पर किया गया कि विधानमण्डल को अधिहरण के लिए उपबन्ध अधिनियमित करने की सक्षमता थी और वह उपबन्ध दाण्डिक प्रकृति का था। इसलिए उस विनिश्चय को इस प्रतिपादना के लिए नजीर नहीं माना जा सकता कि अधिहरण के रूप में शास्ति का उद्ग्रहण करने के लिए उपबन्ध राज्य की विधायी सक्षमता के परे है। निर्णय के दौरान कहे गए इस वाक्य से कि "यदि उस विनिश्चय (**राम गोपाल वाला मामला**[1]) में विधि सही रूप में अधिकथित है तो अपीलार्थी न्यायालय से बाहर हो जाते हैं, किन्तु हमारा विचार है कि उस विनिश्चय को मान्य नहीं ठहराया जा

---

[1] 16 एस० टी० सी० 1005.

[2] (1968) 1 एस० सी० आर० 735.

सकता" यह नहीं समझा जा सकता कि इसमें यह अधिकथित किया गया है कि शास्ति विहित करने के लिए उपबन्ध राज्य विधानमण्डल की सक्षमता के भीतर नहीं है। **रामगोपाल वाले मामले**[1] में गुजरात उच्च न्यायालय के न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया था कि बॉम्बे सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1946 की धारा 12-ए (4) स्पष्ट रूप से उस दशा में शास्ति के लिए उपबन्ध है जिसमें कि किसी व्यक्ति ने धारा 12-ए की उपधारा (1) या (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करके कर के रूप में किसी रकम का संग्रह किया है और इसलिए यह विधायन की आनुषंगिक या प्रासंगिक शक्ति का विधिमान्य प्रयोग था। न्यायपीठ ने **कान्तिलाल बाबूलाल वाले मामले**[2] का अनुसरण किया, जिसके विरुद्ध उच्चतम न्यायालय ने इस आधार पर अपील मंजूर कर ली थी कि इसके द्वारा अनुच्छेद 19 (1) (च) का उल्लंघन हुआ था। इस विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया नहीं समझा जा सकता कि विक्रय कर अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने के लिए शास्ति का उद्ग्रहण राज्य की विधायी सक्षमता में नहीं है।

57. **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** बनाम **अन्नपूर्णा बिस्कुट मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी**[3] वाला मामला उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों के न्यायपीठ का विनिश्चय है। इस मामले में उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 की धारा 29-क की विधिमान्यता को चुनौती दी गई थी। धारा 29-क निम्नलिखित रूप में है—

> *"विशेष मामलों में प्रतिदाय—इस अधिनियम में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या किसी न्यायालय के निर्णय, डिक्री या आदेश में, किसी बात के होते हुए भी, जहां कोई रकम धारा 8-ए की उपधारा (4) या उपधारा (5) के अधीन

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है—

> "Refund in special cases.—Notwithstanding anything contained in this Act or in any other law for the time being in force or in any judgment, decree or order of any court, where any amount is either deposited or paid by any dealer or other person under sub-section (4) or sub-section (5) of

[1] 16 एस० टी० सी० 1005.

[2] 16 एस० टी० सी० 973.

[3] (1973) 3 एस० सी० आर० 987=[1973] 3 उम० नि० प० 351.

किसी व्यवहारी या अन्य व्यक्ति द्वारा जमा की गई है या संदत्त की गई है, वहां ऐसी रकम का या उसके किसी भाग का ऐसी रीति से और इतनी अवधि के भीतर जो विहित की जाए, दावा किए जाने पर, उस व्यक्ति को प्रतिदाय कर दिया जाएगा जिससे ऐसे व्यवहारी या व्यक्ति ने वास्तव में ऐसी रकम या उसका कोई भाग वसूल किया था और किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिदाय नहीं किया जाएगा ।"

अब्दुल कादिर वाले मामले[1] में और **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[2] में किए गए विनिश्चय का अनुसरण करते हुए इस न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर कर दिया कि आक्षेपित धारा सूची 2 की प्रविष्टि 54 के अन्तर्गत आती थी । धारा 29 (1) (क) में निदेश दिया गया है कि व्यवहारी वसूल की गई समस्त रकम को (जो कर के रूप में वसूली योग्य नहीं है) सरकारी खजाने में जमा कर देगा । **अब्दुल कादिर वाले मामले**[1] में किए गए विनिश्चय को देखते हुए इस उपबन्ध को विधिमान्य नहीं ठहराया गया था । इस मामले से विषय को आगे बढ़ावा नहीं मिलता ।

58. इस प्रक्रम पर ऊपर उद्धृत विनिश्चयों द्वारा विधि का संक्षिप्त वर्णन लाभदायक रहेगा । **अब्दुल कादिर वाले मामले**[1] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि व्यवहारी द्वारा कर के रूप में संगृहीत उन धनराशियों के सम्बन्ध में, जो वास्तव में कर के रूप में वसूली योग्य नहीं है, राज्य विधानमण्डल इन रकमों का सरकार को संदाय करने का निदेश नहीं दे सकता । इसका कारण यह दिया गया है कि आनुषंगिक या प्रासंगिक शक्ति का विषय-क्षेत्र राज्य विधानमण्डल को यह उपबन्ध करने की अनुज्ञा नहीं देता कि उस रकम का, जो विधि के अधीन कर के रूप में वसूली योग्य नहीं है, सरकार को इस प्रकार संदाय

---

section 8-A, such amount or any part thereof shall on a claim being made in that behalf in such form and within such period as may be prescribed, be refunded to the person from whom such dealer or the person had actually realised such amount or part, and to no other person."

[1] (1964) 6 एस० सी० आर० 867.

[2] (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930.

करा दिया जाएगा मानो वह कर है। **ओरियण्ट पेपर मिल्स वाले मामले**[1] में अभिनिर्धारित किया गया था कि विधानमण्डल अप्राधिकृत रूप से संगृहीत और सरकार के पास जमा कर का उस व्यक्ति को, जिससे व्यवहारी ने रकम वसूल की थी, प्रतिदाय मंजूर करने के लिए सक्षम था। जहां तक प्रतिदाय मंजूर करने के अधिकार का सम्बन्ध है, इस मामले में किए गए विनिश्चय का **अब्दुल कादिर वाले मामले**[2] और **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[3] में अनुमोदन किया गया है। **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[3] में यह मत व्यक्त किया गया था कि इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि संगृहीत कर का प्रतिदाय सदैव कर के उद्ग्रहण या संग्रहण से सम्बन्धित आनुषंगिक या प्रासंगिक शक्तियों के अन्तर्गत आने वाला विषय होता है। **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[3] में भी, इस सिद्धान्त पर संदेह नहीं किया गया था कि राज्य प्रतिदाय का उपबन्ध कर सकता है। **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**[3] में **ओरियण्ट पेपर मिल्स वाले मामले**[1] को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह मामला इस अभिवचन का समर्थन नहीं करता कि राज्य विधानमण्डल उन रकमों के संदाय की मांग करने के लिए या उन्हें अपने पास रखने के लिए विधि बनाने के लिए सक्षम है जो राज्य को विक्रय कर के रूप में शोध्य न होने पर भी रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी द्वारा वसूल की गई थीं। ये तीन मामले (1) अप्राधिकृत रूप से संग्रहीत रकम जमा करने के लिए निर्धारिती को निदेश, (2) अप्राधिकृत रूप से संगृहीत रकम राज्य द्वारा मांगने और अपने पास रखने के प्रयत्न और (3) और निर्धारिती से संगृहीत रकमों के प्रतिदाय के निदेश के अधिकार से सम्बन्धित हैं। इस प्रश्न पर कि क्या इस प्रकार अप्राधिकृत रूप से संगृहीत रकमों का अधिहरण किया जा सकता है, इन मामलों में से किसी में भी विचार नहीं किया गया है। निर्धारितियों द्वारा **अशोक मार्केटिंग वाले मामले**,[3] से यह समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया गया था कि इसका सम्बन्ध बिहार सेल्स टैक्स ऐक्ट की धारा 20-ए (3) के अधीन निर्धारितियों को सहायक आयुक्त द्वारा जारी की गई उस सूचना से संबंधित था जिसमें उनसे यह हेतुक दर्शित करने की

[1] (1962) 1 एस० सी० आर० 549.

[2] (1964) 6 एस० सी० आर० 867.

[3] (1970) 3 एस० सी० आर० 455=[1974] 3 उम० नि० प० 930.

अपेक्षा की गई थी कि रेल माल-भाड़े पर विक्रय कर का, जो प्रतिदेय हो गया था, अधिहरण क्यों न कर लिया जाए। यद्यपि सूचना में 'अधिहरण' शब्द का प्रयोग किया गया है, तथापि धारा 20-ए (3) के उपबन्धों में केवल यही उल्लेख है कि संगृहीत रकमें सरकारी खजाने में जमा करने की अपेक्षा की जा सकती है। विवाद्यक प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए काउन्सेल की ओर से किए गए इन निवेदनों पर विचार करना अनावश्यक है कि **ओरियन्ट पेपर मिल्स**[1] और **अशोक मार्केटिंग**[2] **वाले मामलों**, में दिया गया तर्क संगत नहीं है। अब्दुल कादिर वाले मामले[3] में न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अधिकथित किया था कि राज्य विधानमण्डल कराधान विधि के उद्देश्यों के कार्यान्वयन के प्रयोजन से कर के रूप में अनुचित रूप से रकम के संग्रह के लिए शास्ति का उपबन्ध करने के लिए सक्षम है। **कान्तिलाल बाबूलाल वाले मामले**[4] में यह न्यायालय इस आधार पर अग्रसर हुआ था कि उपबन्ध दाण्डिक प्रकृति का था और विधानमण्डल उस उपबन्ध को अधिनियमित करने के लिए सक्षम था, चाहे उस धारा को संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) का अतिक्रमण करने वाली धारा के रूप में अवैध ठहराया गया था। सभी विनिश्चयों की संवीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि विधानमण्डल को कराधान कानून का समुचित प्रवर्तन करने के लिए शास्ति उद्ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त है।

59. इसलिए विवाद मुख्यतः इस प्रश्न पर है कि क्या आक्षेपित धारा में अधिहरण के बारे में उपबन्ध शास्ति है और क्या यह व्यवहारी द्वारा अप्राधिकृत रूप से वसूल की गई रकम का संग्रह करने के लिए मात्र युक्ति है। युक्ति या आभासिक विधायन का अभिवचन उस दशा में असंगत होगा जिसमें विधानमण्डल विधि विशेष का अधिनियमन करने के लिए सक्षम है। प्रश्न विधि विशेष का अधिनियमन करने की विधानमण्डल विशेष की सक्षमता का है। यदि विधानमण्डल विधि विशेष को पारित करने के लिए सक्षम है तो वह हेतु संगत नहीं है जिसके कारण उसने कार्यवाही की है। **अब्दुल कादिर वाले मामले**[3] में किए गए

---

[1] (1962) 1 एस० सी० आर० 549.

[2] (1970) 3 एस० सी० आर० 455.=[1974]3 उम० नि० प० 930.

[3] (1964) 6 ए० सी० आर० 867,

[4] (1968) 1 एस० सी० आर० 735.

विनिश्चय के पश्चात्, जिसमें यह बताया गया था कि विधानमण्डल अधिनियम के उपबन्धों के उल्लंघन के लिए शास्ति उपबन्ध करने के लिए सक्षम है जिससे उसका श्रेष्ठतर प्रवर्तन किया जा सके, अधिनियमन में ऐसी शास्ति के उद्ग्रहण करने वाले उपबन्ध को चुनौती नहीं दी जा सकती।

60. कुछ निर्धारितियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउन्सेल श्री काजी ने निवेदन किया कि धारा 37 के अधीन अधिहरण शास्ति नहीं है, क्योंकि खण्ड (1) और धारा 63 में शास्ति का स्पष्ट शब्दों में उपबन्ध किया गया है और अधिहरण का उल्लेख शास्ति के अतिरिक्त किया गया है। उपधारा (2) में अधिहरण का पृथक रूप से और शास्ति से स्वतंत्र रूप से उल्लेख किया गया है। उपधारा (4) में केवल शास्ति का उल्लेख है। इस प्रश्न पर विचार करने के लिए अधिनियम के कुछ उपबन्धों का उल्लेख करना आवश्यक है। धारा 46 में कुछ मामलों में कर के संग्रह के विरुद्ध शास्ति अधिरोपित की गई है। धारा 46 (1) प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह व्यवहारी हो या न हो, ऐसे विक्रय की बाबत कर के रूप में किसी धनराशि का संग्रह करने से रोकती है जिस पर धारा 5 के अनुसार कोई कर संदेय नहीं है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति ऐसे माल के अपने द्वारा किए गए विक्रय पर कर के रूप में किसी धनराशि का संग्रह करता है तो वह धारा 37 (1) के प्रवर्तन द्वारा शास्ति के संदाय के लिए और अधिहरण के रूप में शास्ति के लिए भी दायित्वाधीन है। यह दाण्डिक उपबन्ध उन सभी व्यक्तियों को प्रभावित करता है जो अकराधेय माल का विक्रय करते हैं।

61. धारा 32 (1) (बी) (ii) में दो हजार रुपये से अनधिक शास्ति के अतिरिक्त कर के रूप में संगृहीत धनराशि राज्य सरकार को अधिहृत होने का निदेश है। विद्वान काउन्सेल के अनुसार 'शास्ति' और 'अधिहरण' शब्द भिन्न-भिन्न रूप से लागू होते हैं और प्रस्तुत मामले में अधिहरण ऐसी रकम के सम्बन्ध में है जो उतनी ही है जितनी अप्राधिकृत रूप से संगृहीत की गई थी और इसलिए यह इस प्रकार संगृहीत रकम को वसूल करने के लिए राज्य की मात्र युक्ति है। इस धारा में आगे अधिहरण को प्रभावी करने के लिए प्रक्रिया अधिकथित है जिसमें आयुक्त से सूचना प्रकाशित करने, पक्षकारों की इस बारे में सुनवाई करने की कि शास्ति या अधिहरण या दोनों को, जैसा कि विहित किया

जाए, अधिरोपित क्यों न किया जाए और ऐसा आदेश करने की अपेक्षा की गई है जैसा वह ठीक समझे। शास्ति और अधिहरण के बीच प्रभेद किया गया है। मैं इस अभिवचन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि अधिहरण शास्ति नहीं है। अधिहरण शास्ति का ही एक रूप है। सम्पत्ति का अधिहरण भारतीय दण्ड संहिता में उपबन्धित दण्डों में से एक है। विक्रय कर विधि के उल्लंघन के लिए धारा में दो प्रकार के दण्ड हैं, अर्थात्, शास्ति और अधिहरण के उद्ग्रहण का उपबन्ध है और शास्ति से भिन्न 'अधिहरण' शब्द का प्रयोग करने से इसका शास्ति का स्वरूप नहीं बदलता। धारा 37 (1) (बी) (ii) में उपबन्ध है कि किसी व्यक्ति द्वारा उल्लंघन करके कर के रूप में संगृहीत धनराशि राज्य सरकार को अधिहृत हो जाएगी। उपधारा (2) में निर्धारिती को हेतुक दर्शित करने का अवसर देने के पश्चात् जांच का उपबन्ध है। उपधारा (3) आयुक्त को जांच करने और ऐसा आदेश करने के लिए समर्थ बनाती है जैसा वह ठीक समझे। आयुक्त के 'ऐसा आदेश करने के, जैसा वह ठीक समझे' विवेकाधिकार में यह विवक्षित है कि उसे उपबन्धों का उल्लंघन करके कर के रूप में किसी व्यक्ति द्वारा संगृहीत समस्त धन राशि के अधिहरण का या इसे इस प्रकार संगृहीत रकम तक सीमित रखने का या बिल्कुल भी अधिहरण न करने का, जैसा कि परिस्थितियों में अपेक्षित हो, निदेश देने की शक्ति है। धारा 55 में अपीलों के लिए उपबन्ध है। धारा 55 (6) में उपबन्ध है कि प्रत्येक अपीली प्राधिकारी को निर्धारण की पुष्टि करने, उसमें कमी करने, उसमें वृद्धि करने या उसे बातिल करने या निर्धारण को अपास्त करने की शक्ति प्राप्त है और शास्ति अधिरोपित करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील में अपीली प्राधिकारी ऐसे आदेश की पुष्टि कर सकता है या उसे रद्द कर सकता है या उसमें इस प्रकार परिवर्तन कर सकता है जिससे शास्ति में कमी या वृद्धि हो जाए। किसी अन्य मामले में अपील में अपीली प्राधिकारी ऐसे आदेश पारित कर सकता है जैसे वह न्यायोचित और समुचित समझे। इसी प्रकार की शक्तियां पुनरीक्षण प्राधिकारी को प्रदान की गई हैं। इन उपबन्धों से यह उपदर्शित होता है कि आयुक्त के लिए यह निदेश देना अनिवार्य नहीं है कि अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करके कर के रूप में संगृहीत समस्त रकम का अधिहरण कर लिया जाएगा। प्राधिकारी ऐसी शास्ति का उद्ग्रहण करने के लिए बाध्य

1977(8) eILR(PAT) SC 16

नहीं है जो उतनी ही रकम के समान हो जितनी रकम अप्राधिकृत रूप से संगृहीत की गई थी, क्योंकि अधिहरण की जाने वाली रकम का अवधारण सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखकर करना होगा। हम श्री काजी की इस दलील को नामंजूर करते हैं कि उपधारा में अधिहरण का उद्ग्रहण अप्राधिकृत रूप से संगृहीत रकम की वसूली के लिए केवल एक युक्ति है। मैं मुम्बई उच्च न्यायालय की इस बात से सहमत हूं कि श्री काजी की यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती कि अधिहरण शास्ति है।

62. श्री काजी ने आगे निवेदन किया हैं कि यदि अधिहरण को शास्ति होना है तो वह उन्हीं कार्यों तक सीमित होना चाहिए जिनमें आपराधिक मनःस्थिति है। दूसरे शब्दों में उसका निवेदन है कि शास्ति अधिनियमिति के उपबन्धों का उल्लंघन करके केवल जानबूझकर किए गए कार्यों या लोपों तक सीमित होगी। यह अभिवचन स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि दाण्डिक परिणाम उन कार्यों के भी हो सकते हैं जो आपराधिक मनःस्थिति के साथ या उसके बिना किए गए हों। यह सामान्य जानकारी की बात है कि विधि के विभिन्न उपबन्धों के समुचित प्रवर्तन के लिए दाण्डिक दायित्व अधिरोपित किया जाता है और आपराधिक मनःस्थिति के बिना किए गए कार्यों को दण्डनीय बनाया जाता है।

63. कुछ निर्धारितियों के विद्वान् काउन्सेल श्री काजी और श्री सेन ने हमारा ध्यान ऐसे मामलों की ओर दिलाया जिनमें विक्रय कर अधिनियमिति के उपबन्धों को लागू करने में व्यवहारियों को काफी कठिनाई और अन्याय सहना पड़ा है। यह निवेदन किया गया है कि जहां निर्धारिती ने यह समझते हुए गलत रूप से रकमों का संग्रह किया कि कर उद्ग्रहणीय था, वहां इस प्रकार संगृहीत रकमों का अधिहरण कर लिया गया था जबकि क्रेता को रकमों का प्रतिदाय करने का उसका दायित्व बना रहा। यदि निर्धारिती गलती से क्रेता से कर का संग्रह करने में असफल रहा तो निर्धारिती से कर का उद्ग्रहण और संग्रह कर लिया गया जिससे हर हालत में उसी को हानि हुई। जब खर्चीली मुकद्दमेबाजी के पश्चात् निर्धारिती यह सिद्ध करने में सफल हो गया कि सीमेंट के कट्टों के रेल माल भाड़े पर या अन्तर्राज्यीय विक्रय पर विक्रय कर का संग्रह नहीं किया जा सकता तो सरकार ने तत्काल ऐसी रकम का अधिहरण कर लिया। मैं इस बात से सहमत हूं कि ये निर्धारिती की कठिनाई के दृष्टांत हैं और इन पर सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता

है। किन्तु इस कारण से न्यायालय यह नहीं कह सकते कि यह कार्य विधायी सक्षमता में नहीं है। यह तथ्य कि कुछ मामलों में व्यवहारियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, विधि की विधिमान्यता को, जिसका हमें विनिश्चय करना है, प्रभावित नहीं करेगा। उठाए गए प्रश्नों पर ध्यान से विचार करने पर मेरा समाधान हो गया है कि धारा 37 (1) के उपबन्ध राज्य विधानमण्डल की सक्षमता में हैं।

64. मैं उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत होने में असमर्थ हूं कि धारा 46 (2), जो किसी व्यक्ति द्वारा, जो रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी नहीं है और विक्रय या क्रय की बाबत कर का संदाय करने के दायित्वाधीन नहीं है, माल के विक्रय पर कर के रूप में किसी भी धनराशि का संग्रह किए जाने का और रजिस्ट्रीकृत व्यवहारी द्वारा अधिनियम के उपबन्धों के अधीन उसके द्वारा संदेय कर की रकम से अधिक रकम कर के रूप में संगृहीत किए जाने का निषेध करती है, संविधान का अतिक्रमण करती है। मुझे ऐसे उपबन्ध में कोई असांविधानिकता दिखाई नहीं देती। विक्रय कर विधि के प्रवर्तन के लिए यह उपबन्ध अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ऐसे निषेध के बिना कर के अप्राधिकृत संग्रह को कभी नहीं रोका जा सकता। विक्रय कर विधि में ऐसी वस्तुओं को निश्चित करना होगा जिन पर कर संगृहीत किया जा सकता है और किसी ऐसी रीति से कर के संग्रह का निषेध करना होगा जो विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं है।

65. अन्त में यह दलील दी गई थी कि ये उपबन्ध संविधान के अनुच्छेद 14 और 19 (1) (च) का उल्लंघन करते हैं। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ये उपबन्ध इन दोनों अनुच्छेदों में से किसी का भी उल्लंघन नहीं करते। यह निवेदन किया गया है कि सम्बन्धित प्राधिकारी को धारा 37 के अधीन या धारा 63 (1) के अधीन कार्यवाही करने का विवेकाधिकार दिया गया है और चूंकि अधिनियम में इस बात का मार्गदर्शन नहीं है कि इस विवेकाधिकार का प्रयोग किस प्रकार किया जाना है, अतः प्राधिकारी को इस प्रश्न का अवधारण करने के लिए कि वह इन दोनों उपबन्धों में से किस के अधीन कार्यवाही करेगा मनमानी और अनियन्त्रित शक्ति प्रदान की गई है। धारा 37 के अधीन शास्ति और अधिहरण के उद्ग्रहण का उपबन्ध है जबकि धारा 63 (1) (एच) के अधीन व्यक्ति बिना युक्तियुक्त कारण के धारा 46 के

उपबन्धों का उल्लंघन करने पर दाण्डिक अभियोजन के दायित्वाधीन हो जाता है। मेरे मतानुसार, प्राधिकारी को मनमानी या अनियन्त्रित शक्ति नहीं दी गई है। धारा 37 के अधीन कार्यवाहियां शास्ति और अधिहरण के स्वरूप की हैं जबकि धारा 63 (1) (एच) के अधीन कार्यवाही दाण्डिक अभियोजन द्वारा दण्ड की है। धारा 37 (4) में उपबन्ध है कि 'इस अधिनियम के अधीन अपराध के लिए उन्हीं तथ्यों की बाबत अभियोजन को संस्थित नहीं किया जाएगा जिनके आधार पर इस धारा के अधीन शास्ति अधिरोपित कर दी गई है।' चूंकि मैंने 'शास्ति' शब्द का अर्थान्वयन इस प्रकार किया है कि उसके अन्तर्गत 'अधिहरण' भी आ जाता है, अतः धारा में यह स्पष्ट है कि जब धारा 37 के अधीन कार्यवाही की जाती है तो उन्हीं तथ्यों के आधार पर धारा 63 (1) (एच) के अधीन अभियोजन संस्थित नहीं किया जा सकता। इसलिए अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के बारे में अभिवचन असफल है। इन उपबन्धों द्वारा अनुच्छेद 19 (1) (च) का उल्लंघन होने का अभिवचन भी उतना ही अमान्य है। **कान्तिलाल बाबूलाल वाले मामले**[1] में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि धारा 12-ए (4) विधिमान्य नहीं है, क्योंकि अधिहरण पूर्व सूचना के बिना प्रवर्तित नहीं किया जा सकता। वह अभिवचन अब उपलभ्य नहीं है, क्योंकि धारा 37 (2) में वह प्रक्रिया विहित है जिसमें आयुक्त निर्धारिती को शास्ति या अधिहरण के उद्ग्रहण के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने में समर्थ बनाने के लिए सूचना देने के लिए बाध्य है। इसके अतिरिक्त आयुक्त द्वारा किए गए आदेश के विरुद्ध अपील और पुनरीक्षण के उपबन्ध हैं। अनुच्छेद 19 (1) (च) पर आधारित अभिवचन असफल है।

66. निर्धारितियों के विद्वान् काउन्सेल द्वारा यह निवेदन किया गया था कि विधायी सक्षमता और अनुच्छेद 14 तथा 19 (1) (च) पर आधारित चुनौती से पृथक् कुछ तथ्य के प्रश्न उठते हैं और उन पर उच्च न्यायालय को विचार करना होगा। ऐसे मामलों का विनिश्चय करने पर उच्च न्यायालय को उन मामलों का गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करने का निदेश दिया जाएगा।

अपीलें मंजूर की गईं

श्या०

---

[1] (1968) 1 एस० सी० आर० 735.